e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2320-6710

IJIRSET

International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 9, Issue 10, October 2020

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.512

9940 572 462 | 6381 907 438 | ijirset@gmail.com | www.ijirset.com

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Vijendra Prasad Meena

Assistant Professor in Hindi, S.P.N.K.S. Government P.G. College, Dausa, Rajasthan, India

सार

हमारे साहित्य में 'दलित अनुभव की खोज' एवं दलित पात्रों की गतिविधियों के चित्रण एवं प्रतिस्थापन के प्रयास को समकालीन हिंदी साहित्य के विकास की विशिष्ट स्थिति मानी जानी चाहिए। ऐसे किसी भी प्रयास की यह मांग स्वभाविक है कि हमारे 'क्लासिकल' साहित्य भंडार में यदि किसी जाति-विशेष को लेकर कुत्सित प्रतिस्थापनाएं एवं दृष्टिकोण विद्यमान हैं तो उन्हें आलोचनात्मक ढंग से विश्लेषित किया जाये। ऐसे कुछ प्रयास किये भी जा रहे हैं। इनका हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार एवं परिवर्तनकामी विचारक प्रेमचंद से जूझना भी काफी स्वभाविक सा है।
आलोचना के क्षेत्र में इन प्रयासों ने दो दृष्टिकोणों को हमारे सामने रखा है। एक खेमा डा. धर्मवीर व अन्य के नेतृत्व में प्रेमचंद पर दलित पात्रों के-विशेषत: 'कफन' कहानी (१९३५-३६) का हवाला देते हुए-लम्पटीकरण और सामंती मूल्यों एवं वर्णव्यवस्था की पक्षधरता का आरोप लगाता है। दूसरा खेमा प्रेमचंद की कहानियों को यथार्थवादी और संभवत: प्राकृतिकवादी मानते हुए माधव एवं घीसू जैसे पात्रों के व्यवहार की 'एतिहासिक भौतिकवादी' व्याख्या प्रस्तुत करता है। साथ ही यह आग्रह करता है कि दलित जीवन से जुड़ी प्रेमचंद की अन्य सराहनीय एवं अंतर्दृष्टिपूर्ण कहानियों को भी बहस का आधार बनाया जाए। राजीव रंजन गिरि के संपादन में आया 'घासवाली: प्रेमचंद की दलित जीवन से जुड़ी कहानियों का संकलन' इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

भारत में दुनिया के सबसे बड़े किसान आन्दोलन ने केन्द्र की मोदी सरकार को हिलाकर रख दिया. अपनी सामूहिक ताकत का परिचय देते हुए किसानों ने अपनी जिस शालीनता, धैर्य और दृढ़ता का परिचय दिया, उसे प्रेमचंद ने काफी पहले ही पहचान लिया था. प्रेमचंद की कहानियों में आए अन्य तमाम किसान चरित्रों को देखते हुए प्रेमचंद के किसान के बारे में कुछ बातें निश्चित तौर पर कही जा सकती हैं कि- 1. वे प्रायः छोटी जोत के किसान हैं, जो अपने खेतों में प्रायः स्वयं काम करते हैं. 2. खेती उनके लिए महज व्यवसाय नहीं, बल्कि 'मरजाद' को बचाए रखने का साधन होता है. 3. वे प्रायः पिछड़ी जाति के हैं.उसी तरह किसानों के इस आन्दोलन ने सरकारी तंत्र, कुलक तबका और उसके रखे हुए चापलूस गुंडों ने जिस कायरता, निर्लज्जता और हैवानियत का परिचय दिया, [1,2]उसकी भी पहचान प्रेमचंद ने अपने समय में ही कर लिया था. उन्होंने साफ-साफ बताया कि ये तबका समाज का सबसे निकृष्ट, निर्लज्ज और शोषक का सबसे बड़ा धारक है.
ये किसानों-मजदूरों के हमदर्द बनते हैं, बड़े-बड़े आदर्श बघारते हैं लेकिन वास्तव में ये तबका समाज के सबसे बड़े लुटेरे हैं, निर्लज्ज हैं, मनुष्यता से रहित हैं, नैतिक बोध से रहित हैं, कट्टर, अनुदार, अमानवीय हैं, जिसका एक मात्र काम लोगों का जमीन हड़पना, मजदूरों के मजदूरी का पैसा हड़पना, कर चोरी करना, घनघोर जातिवाद करना, कमजोरों के बहन-बेटियों की आबरू लुटना आदि जैसे तमाम कुरीतियों का गंगोत्री बनना ही इनके भाग्य में बदा है.दिल्ली के बॉडरों पर पूरे एक साल चले इस किसान आन्दोलन ने प्रेमचंद को शब्दशः सच साबित कर दिया. किसान समुदाय और इस तथाकथित कुलीन-शोषणकारी तबकों के बीच साफ-साफ विभाजन रेखा खीच दिया. यह तथाकथित कुलीन तबका ने जिस तरह किसानों के पिज्जा खाने, एसी कमरे में लेट जाने, अच्छे कपड़े पहन लेने जैसी बातों पर जिस तरह आसमान सर पर उठा लिया, मीडिया, सोशल मीडिया पर दुश्प्रचार का बाढ़ ले आया, किसानों के खिलाफ तमाम तरह के दुश्प्रचार फैलाने का कुकर्म किया, उसने इस तथाकथित कुलीन तबके के चरित्र पर प्रेमचंद के गंभीर समझ को सच साबित कर दिया

परिचय

इस संकलन की समीक्षा करते हुए मैं अपने विचार दो बातों पर केन्द्रित करूंगा। पहला, राजीव रंजन गिरि लिखित प्रस्तावना के आलोचनात्मक मूल्यांकन पर और दूसरा, प्रेमचंद की संकलित कहानियों की समाजशास्त्रीय विवेचना पर। पहला महत्वपूर्ण सवाल इस संदर्भ में यह है कि प्रेमचंद की कहानियों में 'दलित' का अर्थ क्या है? यह संकलन 'दलित' शब्द की वर्तमान जातीय पहचान एवं सरकारी अनुसूचिका में प्रस्तुत अर्थ पर आधारित दिखता है। इसके अनुसार सरकारी आंकड़े में अनुसूचित जाति शीर्षक से संकलित जातियां ही मात्र भारतीय समाज का 'दलित' समुदाय है। लेकिन हमारा सवाल इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि 'दलितों' का राजनीतिक-सामाजिक दर्शन शोषित, दमित और हाशियाकृत सामाजिक समूह की ओर इशारा करता है। उल्लेखनीय है कि १९६०

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

के दशक में दलित शब्द अपने इसी अर्थ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति से उत्पन्न हुआ था। अनुसूचित जाति में संकलित जातियों की सूची बनती-घटती-बढ़ती रही है।[3,4] प्राय: १९५० एवं इसके बाद से। ऐसे में इस सवाल के जवाब का अभाव संपादकीय दृष्टि की एक कमी मालूम होती है। प्रस्तुत कहानियों के अध्ययन से प्रेमचंद में १९११ से १९३६ के बीच दलितों के तीन अर्थों का विकास दिखता है। शुरूआती कहानियों में वे सिर्फ अछूतों को केन्द्र में रखते हैं। १९२६-२७ की 'कजाकी` और 'मंदिर` कहानियों से आगे कुछ गैर-अछूत शोषित-दमित और विभेदीकृत जातियां भी शामिल होती हैं। १९३१ आते-आते उनकी 'लांछन` कहानी में बवुआइन देवीरानी जैसी महिला भी किसी दलित से भिन्न नहीं दिखती हैं। वस्तुत: इस कहानी में मुन्नु मेहतर की तुलना में देवीरानी 'दलित` जीवन की परिभाषा के कुछ ज्यादा अनुकूल दिखती है।
प्रेमचंद की कहानियों में 'दलित` के माने की खोज से जुड़ा दूसरा अहम् सवाल है : उनकी कहानियों में दलित सवाल एवं समस्या क्या है? इस पर भी यह संकलन प्राय: चुप-सा दिखता है। हम देखते हैं कि उनकी शुरूआती कहानियों में महज छुआछूत जैसी हिंदू समाज की नैतिक बुराई 'दलित समस्या` है, और हिंदू समाज का सुधार एवं छुआछूत का अंत ही बड़ा दलित सवाल है। उल्लेखनीय है कि यह समस्या और सवाल इन कहानियों में विशिष्ट रूप से अभिजात जातियों के सुधारवादी आंदोलन के प्रश्न मात्र हैं। इन कहानियों के केन्द्रीय पात्र भी ऐसे ही व्यक्तित्व रहे हैं।जहां १९२४ के 'सौभाग्य के कोड़ों से`, 'दमन` और १९२७ के 'मंदिर` एवं १९२९ की 'घासवाली` से मंदिर प्रवेश के जरिये 'स्वतंत्रता` और 'सम्मानपूर्ण जीवन` का अधिकार महत्वपूर्ण प्रश्न बनता है। इन कहानियों में दलित पात्र भी कहानी के केन्द्र में आते हैं। जबकि, १९३४ की 'दूध का दाम`, १९३५-३६ की 'कफन` और १९३१ की 'जुरमाना` में गरीब श्रमिक के रूप में दलितों के शोषण एवं वर्गीय शोषण से मुक्ति दलित समस्या एवं सवाल के रूप में सामने आते हैं। यहां दलितों का अपनी परिस्थिति में बदलाव के लिए किया गया प्रयास प्रेमचंद के लिए आलोचनात्मक विश्लेषण का विषय रहा है। ऐसे में किसी भी 'आमूलचूल परिवर्तनकारी प्रयास और इसकी दृष्टि का अभाव` विचारणीय दलित प्रश्न व समस्या बनता हुआ दिखता है और तभी प्रेमचंद 'कफन` में व्यंग्यात्मक शैली में लिखते हैं 'हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था, और किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मंडली में जा मिला था।`पुस्तक-सम्पादक का विचार है कि जहां आरम्भिक कहानियों में अछूतोद्धार जैसी आर्यसमाज की समाज-सुधारक दृष्टि का प्रभाव है वहीं १९२० के दशक एवं इसके बाद की कहानियों में डा.अम्बेडकर की अपेक्षा प्रेमचंद गांधी के विचारों के ज्यादा करीब हैं (बजाए गांधी के अछूतोद्धार आह्वान के)। लेकिन सम्पादक की दूसरी समझ प्रेमचंद की १९२७ की 'मंदिर` और १९२९ की 'घासवाली` और इसके बाद की कहानियों पर शायद ही लागू होती है। उदाहरण के लिए, इस समय से प्रेमचंद दलित समस्या को दलित पात्रों की गरीबी की समस्या एवं उनकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को जातिभेद के प्रबल कारक के रूप में देख रहे थे। जबकि, गांधी १९३२-३३ में भी दलित सवाल पर अछूतोद्धार से आगे नहीं बढ़ पाये थे। उल्लेखनीय है कि १९३५-३६ की कहानियां 'कफन` और 'जुरमाना` एवं १९३४ की 'दूध का दाम` में वर्गीय शोषण और शोषणकारी श्रम संबंध कहीं बड़ी दलित समस्या के रूप में चिह्उित किये गये हैं। इसी आधार पर इस समय दलित समस्या के समाधान के बतौर-अपने शुरूआती सुधारवादी तरीके से आगे बढ़ते हुए-सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक और श्रम संबंधों में प्रेमचंद आमूलचूल परिवर्तन की जरूरत का संकेत देते नजर आते हैं।[5,6] इन्हीं अर्थो में वह शुरूआत के आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकार से संरचनावादी 'समाजवादी` साहित्यकार के रूप में विकसित होते हुए दिखते हैं। अत: प्रेमचंद दलित समस्या और सवाल पर गांधी से कहीं पहले और गांधी की सुधारवादी सीमाओं से कहीं आगे परिवर्तनकारी 'समाजवादी` व्यवस्था को समाधान के रूप में देखते हैं। जहां तक अम्बेडकर की बात है, वह भी १९३० के मध्य तक एक ओर जाति विनाश और दूसरी ओर 'सेपरेट इलेक्ट्रेट` की मांग के तहत जाति के आधुनिक रूप में गठन के दर्शन तक पहुंच पाये थे। मैं प्रेमचंद की संरचनावादी दृष्टि की सीमा की चर्चा इस लेख के अंतिम हिस्से में करूंगा।

संकलन के सम्पादक ने सही ही कहा है कि प्रेमचंद के दलित पात्रों का वैचारिक विकास हुआ है। 'सद्गति` (१९३०-३१) के 'दुखी` की तुलना में 'घासवाली` (१९२९), 'कफन` (१९३५-३६) के पात्र शोषणकारी चक्र को समझते हैं, प्रतिरोध करते हैं और चुनौती देते हुए नजर आते हैं। जबकि, पुस्तक की प्रस्तावना में उस वैचारिक विकास-उभरते प्रतिरोधों एवं चुनौती देने के प्रयासों को अर्थात् दलित मुक्ति संघर्ष की दिशा और स्वरूप के विश्लेषण का अभाव शिद्दत से महसूस किया जा सकता है। वस्तुत: 'घासवाली` (१९२९) की मुलिया, 'ठाकुर का कुआं` (१९३१) की गंगी, 'दूध का दाम` (१९३४), 'कफन` (१९३५-३६) के माधव और घीसू के प्रतिरोधों की दिशा और स्वरूप अलग-अलग दिखते हैं, वरन् मुलिया का प्रतिरोध जहां सशक्त, चुनौतीपूर्ण ढंग़ से स्वतंत्र व सम्मानपूर्ण जीवन के लिए था, वहीं माधव और घीसू की चुनौती प्रतिगामी अल्पकालिक मस्ती भरे जीवन की राह की ओर ले जाता है और सम्पादक द्वारा ऐसे प्रतिरोध का उत्सवीकरण और इसे दलित जीवन के विशिष्ट अनुभव से जोड़ना शायद ही सराहनीय लगे।संपादक का यह मत उचित है कि 'प्रेमचंद की इन कहानियों में जो दलित पात्र हैं, उनमें पुरुषों की अपेक्षा स्रि्यां ज्यादा साहसी एवं जुझारू हैं।` इसकी व्याख्या संपादक शोषण की सीमा और प्रतिरोध की चेतना के बीच सीधा संबंध मानकर करते हैं। लेकिन, यह एक अहम् सवाल है कि 'घासवाली` की मुलिया के अलावा अन्य शोषित स्रि्रों की चुप्पी या गैरप्रतिरोधपूर्ण स्थिति का कारण बताने में यह व्याख्या बताने में असमर्थ क्यों है? दूसरे शब्दों में क्या हमें मुलिया के प्रतिरोध को 'विलक्षण` सा मान किसी अन्य ठोस व्याख्या की जरूरत नहीं है? दरअसल, समाजशा ी य अध्ययन में शोषण एवं प्रतिरोध की चेतना के बीच स्थापित संबंधों की व्यापक जांच-पड़ताल की जरूरत है।[7,8]
लेख के इस हिस्से में मैं पुस्तक की प्रस्तावना से अपना ध्यान हटाते हुए प्रेमचंद की इन कहानियों के राजनीतिक एवं दार्शनिक पक्ष की विवेचना करना चाहता हूं। आज विद्वानों में अमूमन सहमति है कि प्रेमचंद का वैचारिक पक्ष शुरूआती दौर में 'विचारवाद` एवं

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

'व्यवहारवाद` के करीब था। कुछ लोग गलती से इसे प्रेमचंद का गांधीवादी चरण मानते हैं, क्योंकि १९११-१३ की उनकी कहानियों पर शायद ही अमूर्त गांधीवादी सुधारवाद एवं विचारवाद का प्रभाव हो। १९२७ की 'मंदिर` १९३०-३१ की 'सद्गति` और इसके बाद की कहानियों में प्रेमचंद, जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, समाजवादी-संरचनावादी विचारक के रूप में विकसित होते हुए दिखते हैं। संपादक की धारणा के विपरीत मैं समझता हूं कि १९३२ की 'ठाकुर का कुआं` से आगे प्रेमचंद भारतीय समाज के आर्थिक संबंधों-व्यवस्था को सामाजिक-जातीय शोषण की धुरी भी समझने लगे थे।
अपने विश्लेषण में प्रेमचंद समकालीन समाजवादी-साम्यवादी लोगों से एक मामले में आगे भी दिखाई देते हैं। इस समय के समाजवादी-साम्यवादी जहां 'आर्थिक नियतिवाद` की धारणा के शिकार थे, वहीं प्रेमचंद १९३२ से १९३६ के बीच की कहानियों में मानव का अपने भविष्य, इतिहास निर्माण के प्रयास और इन प्रयासों की सफलता-असफलता को भी मानव की जीवन दशा के लिए जिम्मेदार, स्वतंत्र और एकमात्र कारक के रूप में चिन्हित करते हैं। उल्लेखनीय है कि इस दार्शनिक मत को १९६० के दशक में फ्रांसीसी संरचनावादी 'अलयूजर` के वरक्स ब्रिटिश इतिहासकार-सिद्धांतकार ई.पी. थाम्पसन ने रखा था . इस अंतर्दृष्टि के बावजूद प्रेमचंद के विश्लेषण एवं वैचारिक आधार की एक गंभीर सीमा भी इन कहानियों में मौजूद है। संपादक प्रस्तावना के पहले पृष्ठ पर कहते हैं कि दलितों का तबका दोहरी गुलामी अंग्रेजी सत्ता और ब्राह्मणवाद झेल रहा था। लेकिन, वह इस बात पर मौन हैं कि किस प्रकार दोनों प्रकार की गुलामी के तंत्र एक-दूसरे से गंुथे थे या ब्राह्मणवादी गुलामी का राजनीतिक गठन कैसा था? औपनिवेशिक गुलामी किस प्रकार ब्राह्मणवादी गुलामी को संरक्षण प्रदान कर रहा था? क्या दोनों एक-दूसरे को मजबूती नहीं प्रदान कर रहे थे? इस महत्वपूर्ण राजनीतिक-आर्थिक पहलू का अभाव इस पुस्तक में उपलब्ध प्रेमचंद की कहानियों की अफ्सोसजनक कमी है। संभवत: इस विश्लेषण की अनुपस्थिति प्रेमचंद के दलित पात्रों की किसी राजनीतिक तैयारी की गैर मौजूदगी की ओर भी इशारा करता है। जबकि, हम जानते हैं कि १९३० के दशक के पूर्वार्ध में भी दक्षिण भारत और बिहार के सारण जिले में दलित राजनीतिक लामबंदी की ओर बढ़ रहे थे। ऐसे में कोई यदि यह आरोप लगाता है कि प्रेमचंद के तथाकथित विद्रोही दलित पात्र शायद ही मजबूत एवं प्रभावशाली विद्रोही एवं विचारक के रूप में नजर आते हैं, तो यह गलत नही लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि १९३४ से १९३६ की कहानियों में प्रेमचंद पूर्वी उत्तर प्रदेश के दलित समाज और किसान समाज के भीतर अपनी स्थिति में परिवर्तन के लिए किये जा रहे प्रयासों की खोज करते हैं, लेकिन उनकी 'निराशा` कफन में किसानों के 'विचार शून्य समूह` के उपर व्यंग्यात्मक टिप्पणी के रूप में सामने आती है।[9,10]
अब सवाल यह उठता है कि क्या प्रेमचंद की यह निराशापूर्ण विवेचना 'यथार्थवादी` है या कहानीकार का 'व्यक्तिवादी` विमर्श है? जो विद्वान प्रेमचंद पर 'कफन` का हवाला देते हुए-दलित पात्रों के लम्पटीकरण और सामंती मूल्यों के पक्षधर होने का आरोप लगाते हैं, वे वस्तुत: प्रेमचंद की इन कहानियों को 'गैरन्यथार्थवादी` और 'व्यक्तिवादी` विमर्श बताते हैं। सामंती मूल्यों की पक्षधरता का आरोप कफन कहानी के संदर्भ में गैरप्रासंगिक और महज उत्तेजनापूर्ण लगता है।
लेकिन यदि हम मानते हैं कि प्रेमचंद की ये कहानियां यथार्थवादी हैं, तो क्या यह १९३० के पूर्वार्ध के किसान एवं दलित समाज के राजनीतिक-वैचारिक चरित्र का प्रमुख पक्ष प्रस्तुत करता है? प्रेमचंद के सही मूल्यांकन के लिए विद्वानों द्वारा इस सवाल के व्यापक जांच-पड़ताल की जरूरत है। अभी तो इस संबंध में प्रेमचंद के पक्ष में इतना ही कहा जा सकता है कि उनके ईद-गिर्द के पूर्वी उत्तर प्रदेश का दलित-कृषक समाज शायद उनकी नजर में क्रांतिकारी अंगड़ाई नहीं ले रहा था और इस स्थिति को प्रेमचंद ने अपनी अंतिम कहानियों में-खासकर 'कफन` में-कुछ निराशापूर्ण ढंग़ से सामने रखा है।यह बात अब अलग से कहने की ज़रूरत नहीं कि प्रेमचंद मूल रूप से किसान जीवन के कथाकार हैं. किसानों के जीवन के राग-विराग, हर्ष-शोक, उनकी पारिवारिक संरचना, सामाजिक संरचना, समस्याएं, आर्थिक कठिनाइयां आदि प्रायः हर प्रसंग प्रेमचंद के उपन्यास-कहानियों में खूब मिलते हैं. कह सकते हैं कि पूरी कृषक संस्कृति प्रेमचंद के कथा साहित्य में दिखाई पड़ती है और इसी किसानी संस्कृति के प्रति प्रेमचंद का सम्मान भी है, उनकी आस्था भी है. अब सवाल यह है कि प्रेमचंद के किसान कौन लोग हैं ? वे कौन लोग हैं जिन्होंने इस कृषक संस्कृति के निर्माण और संरक्षण का दायित्व निभाया है ,ध्यान देने की बात है कि यह जो कृषक संस्कृति प्रेमचंद के कथा साहित्य में छायी हुयी है, उस संस्कृति के मूल घटक वे लोग हैं जो खेती-किसानी से सीधे जुड़े हुए लोग हैं, जिनके पास कुछ थोड़े-बहुत खेत हैं, जो उन खेतों में स्वयं काम करते हैं और खेती जिनके लिए 'मरजाद' की बात है. यह 'मरजाद' उस संस्कृति के निर्माण और उसके संरक्षण का आधार है. प्रेमचंद इस बात को खूब अच्छी तरह समझते हैं और हमें भी समझाते हैं.प्रेमचंद के तमाम किसान पात्र जो 'मरजाद' के लिए जान देते हैं, वे पिछड़ी जाति के किसान हैं. क्या इस तथ्य को महज एक संयोग मानकर छोड़ दिया जाना चाहिए ? प्रेमचंद के लिए किसान केवल अर्थ आधारित वर्ग ही नहीं है, बल्कि उसका एक स्पष्ट जातिगत आधार भी है इसलिए प्रेमचंद के किसानों पर विचार करते समय जाति के सामाजिक आधार को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए. प्रेमचंद के साहित्य में आए तमाम किसानों की सूची बनाई जाए तो बहुत ही कम किसान ऊंची जातियों और दलित जातियों के मिलेंगे. जहां कहीं वे किसान के रूप में दिखाई पड़ते भी हैं, वहां वास्तविक अर्थ में वे किसान होने की शर्तों को पूरा नहीं करते.

'रंगभूमि' के सूरदास को देखिए. उसके पास जमीन तो है, पूरे उपन्यास की कथा उसी ज़मीन को बचाने के संघर्ष की कथा है, मगर सूरदास किसान नहीं है. कहीं भी प्रेमचंद ने सूरदास को खेती करते या खेती की चिंता करते हुए नहीं दिखाया है. 'कर्मभूमि' में दलितों की बस्ती में सलोनी बुढ़िया और गूदड़ चौधरी के पास भी कुछ खेत हैं, लेकिन प्रेमचंद ने उन्हें भी खेती की चिन्ता करते हुए नहीं दिखाया. खेती-किसानी की जो पूरी एक संस्कृति प्रेमचंद के कथा साहित्य में दिखाई पड़ती है, वह प्रायः

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

पिछड़ी जाति के किसानों के संदर्भ में ही दिखाई पड़ती है, अन्यत्र नहीं.प्रेमचंद के किसान और कृषक-संस्कृति के इस जातिगत सामाजिक पहलू को ठीक से समझे जाने की जरूरत है. इस विषय पर युवा आलोचक डा. कमलेश वर्मा ने बारीकी से विचार किया है. उन्होंने अपने लेख 'प्रेमचंद के किसान, पिछड़ी जातियां और भारतीय संस्कृति' में प्रेमचंद के किसानों की जातिगत पहचान तथा भारत की कृषि-संस्कृति के निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का बेहतरीन विश्लेषण किया है. वे लिखते हैं-

'गोदान' के होरी महतो से लेकर 'पूस की रात' के हल्कू तक-जहां भी किसान है, वह पिछड़ी जाति का व्यक्ति है. प्रेमचंद ने किसान को लेकर जितनी कहानियां लिखी है, उनमें किसान के रूप में पिछड़ी जाति के ही पात्र हैं... उन्होंने जहां भी किसान-जीवन को विषय बनाया है, वहां का पात्र पिछड़ी जातियों से चुना है. उनकी स्पष्ट दृष्टि दिखाई पड़ती है कि किसान का अर्थ है पिछड़ी जातियां. उन्होंने ऊंची जातियों तथा दलित जातियों से किसान पात्र नहीं लिए हैं.

'प्रेमाश्रम' के मनोहर से लेकर 'गोदान' के होरी तक और प्रेमचंद की तमाम कहानियों में आए किसान पात्रों के आधार पर प्रेमचंद की पूरी कथा-यात्रा को ध्यान से दखें तो उनके किसान को बहुत अच्छी तरह समझा जा सकता है. मनोहर, होरी, शंकर, भोला महतो, हल्कू, तुलसी और प्रेमचंद की कहानियों में आए अन्य तमाम किसान चरित्रों को देखते हुए प्रेमचंद के किसान के बारे में कुछ बातें निश्चित तौर पर कही जा सकती हैं कि-

- वे प्रायः छोटी जोत के किसान हैं, जो अपने खेतों में प्रायः स्वयं काम करते हैं.
- खेती उनके लिए महज व्यवसाय नहीं, बल्कि 'मरजाद' को बचाए रखने का साधन है.
- वे प्रायः पिछड़ी जाति के हैं.

होरी महज पांच बीघे का किसान है. वह और उसका पूरा परिवार (यहां तक कि उसकी छोटी बेटी रूपा भी) खेतों में काम करता है. वह निश्चित रूप से प्रेमचंद का आदर्श किसान चरित्र है. ध्यान देना चाहिए कि 'गोदान' में खेत मातादीन के पास भी है, बल्कि होरी से ज्यादा है. मगर प्रेमचंद की निगाह में वह किसान नहीं है. वह ब्राह्मण है और उसका मूल व्यवसाय जजमानी है. मातादीन का बेटा दातादीन झिंगुरी सिंह से कहता है –

'तुम जजमानी को भीख समझो, मैं तो उसे जमींदारी समझता हूँ; बंकघर. जमींदार मिट जाए, वंकघर टूट जाए लेकिन जजमानी अन्त तक बनी रहेगी. जब तक हिन्दू-जाति रहेगी, तब तक ब्राह्मण भी रहेंगे और जजमानी भी रहेगी... ऐसा चैन न जमींदारी में है, न साहूकारी में.'

इससे आगे प्रेमचंद मातादीन की खेती के बारे में लिखते हैं –

'दूसरे पेड़ के नीचे दातादीन का निजी पैरा था. चार बैलों से मड़ाई हो रही थी. धन्ना चमार बैलों को हाँक रहा था, सिलिया पैर से अनाज निकाल-निकालकर ओसा रही थी और मातादीन दूसरी ओर बैठा अपनी लाठी में तेल मल रहा था.'

गौर करने की बात है कि मातादीन के पास खेत है, मगर वह खेती का काम नहीं करता. धन्ना चमार खेत में काम करता है, मगर उसके पास अपना खेत नहीं हैं. वह दूसरों के खेत में मजदूरी करता है. होरी के पास थोड़े-से सही, पर अपने खेत हैं और वह सपरिवार उसमें काम करता है. प्रेमचंद की निगाह में किसान न तो मातादीन है और न धन्ना चमार, किसान तो होरी ही है. खेती-किसानी अगर किसी के लिए मरजाद का मामला है तो होरी के लिए. उपन्यास के शुरूआती प्रसंगों में ही गोबर को समझाते हुए होरी कहता है –

'हमीं को खेती से क्या मिलता है ? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती. जो दस रुपए महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है; लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता. खेती छोड़ दें, तो और करें क्या ? नौकरी कहीं मिलती है ? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है. खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है.'

प्रेमचंद के पूरे कथा साहित्य में किसान अधिकांशतः पिछड़ी जाति से आते हैं. पिछड़ी जातियां जाति-व्यवस्था में मध्यवर्ती स्थिति रखती हैं. आर्थिक आधार पर भी इनकी स्थिति कमोबेश मध्यवर्ती ही ठहरती है. प्रेमचंद के किसान ठीक इसी तरह की सामाजिक स्थिति वाले किसान हैं. इनके चरित्र में एक प्रकार का सीधापन है जो इन्हें सबसे मिला-जुलाकर चलने वाले एक सरल ग्रामीण का रूप देता है. पिछड़ी जाति के किसान का चरित्र-चित्रण अपनी कहानी 'सवा सेर गेहूं' में प्रेमचंद इस तरह करते हैं –

'किसी गांव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था. सीधा-सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने में, न किसी के देने में. छक्का-पंजा न जानता था, छल-प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिंता न थी,

ठगविद्या न जानता था, भोजन मिला, खा लिया, न मिला, चबेने पर काट दी, चबैना भी ना मिला, तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहा.'[11,12]
पिछड़ी जाति के किसान शंकर का यह चरित्र प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य में आए किसानों के चरित्र का प्रतिनिधि है. शंकर के चरित्र की इन विशेषताओं के माध्यम से प्रेमचंद केवल अपनी कहानी के एक पात्र का चरित्र नहीं गढ़ रहे, बल्कि भारतीय किसान का एक चित्र गढ़ रहे हैं.

प्रेमचंद के किसान मनुष्य हैं- सच्चे अर्थों में मनुष्य, मनुष्यता की कसौटी पर खरे सरल-सहज श्रमजीवी **!** 'गोदान' का होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधि चरित्र है. होरी के चरित्र की कुछ विशेषताओं को 'गोदान' की निम्नलिखित पंक्तियों के आधार पर समझा जा सकता है-
'होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था.' होरी की कृषक प्रकृति झगड़े से भागती थी. चार बातें सुन कर गम खा जाना इससे कहीं अच्छा है कि आपस में तनाजा हो. कहीं मार-पीट हो जाए तो थाना पुलिस हो, बंधे-बंधे फिरो, सबकी चिरौरी करो, अदालत की धूल फांको, खेती-बारी जहन्नुम में मिल जाए.'
दूसरों की मजबूरी का फायदा उठाकर अपना लाभ गांठना अनैतिक है- इस तरह का नैतिक बोध पिछड़ी जाति के किसान के भीतर ही है. होरी में भी छोटी-छोटी चालाकियां करने की आदत है. वह भोला से गाय पा जाने के लिए अपनी तरफ से चालाकी करता ही है, लेकिन इन सबके बावजूद उसके भीतर की मनुष्यता और उसका गहरा नैतिक बोध कभी लुप्त नहीं होता. जैसे ही उसे एहसास होता है कि अपनी चालाकी में वह सामने वाले की मजबूरी का लाभ उठा रहा है, वह तुरंत पीछे हट जाता है. यही दरअसल मनुष्यता है. यह मनुष्यता प्रेमचंद ने ऊंची जाति के पात्रों को यदाकदा ही बख्शी है
प्रेमचंद के कथा साहित्य में ऊंची जाति के पात्रों में प्रायः एक प्रकार का जातिवादी अभिमान मौजूद है. इस जातिवादी अभिमान के कारण उनमें एक प्रकार की अभद्रता, ढीठपना और क्रूरता भी मौजूद है. दूसरों को ठगकर, उनकी मजबूरी का लाभ उठाकर इन्हें एक प्रकार का आत्मतोष मिलता है. यहां किसी प्रकार का कोई नैतिक बोध नहीं है. छोटे-मोटे साधारण किसानों-बेगारों को ठगना तो छोड़ दें, ये जमींदारों को भी चकमा देने में कामयाब हो जाते हैं.
ज़ाहिर है कि अपनी सामाजिक जातिगत हैसियत के बल पर यह ऊपर के अमले-अधिकारियों से अपनी सांठ-गांठ बिठाए रखते हैं. 'प्रेमाश्रम' के एक प्रसंग में प्रेमचंद ने लिखा है- 'गांव में दस-बारह घर ठाकुरों के थे. उनसे लगान बड़ी कठिनाई से वसूल होता था…'. एक और उदाहरण देखा जा सकता है –

'प्रेमाश्रम' में ही ज्ञानशंकर की पत्नी विद्या की बड़ी बहन गायत्री के पास भी थोड़ी जमींदारी है. उसके असामियों में कुछ ठाकुर भी हैं. ठाकुर गायत्री देवी की जमीन हड़प लेते हैं. कानूनगो गायत्री देवी को सूचना देता है- 'आपको सुनकर रंज होगा. सारन में हुजूर की कई बीघे सीर असामियों ने जोत ली है, जगराँव के ठाकुरों ने हुजूर के नए बाग को जोतकर खेत बना लिया है, मेड़ें खोद डाली हैं. जब तक फिर से पैमाइश न हो कुछ पता नहीं चल सकता कि आपकी कितनी जमीन उन्होंने खाई है.'[13,14]
प्रेमचंद के पूरे कथा साहित्य में शायद ही कोई ऐसा प्रसंग ढूंढकर निकाला जा सके, जहां किसी पिछड़ी जाति के किसान ने किसी जमींदार की जमीन हड़पने का विचार भी किया हो. इस मामले का संबंध भारतीय समाज की जातिवादी संरचना तथा विभिन्न जातियों की 'सोशल ट्रेनिंग' से है. पिछड़ी जातियों की 'सोशल ट्रेनिंग' ऊंची जातियों की 'सोशल ट्रेनिंग' से भिन्न है.
इसी भिन्न 'सोशल ट्रेनिंग' का नतीजा है कि होरी जैसा पिछड़ी जाति का किसान किसी तरह के झगड़े-झंझट में नहीं पड़ना चाहता, अपना सर्वस्व लुटाकर भी किसी का एक पैसा नहीं मारता और दूसरी तरफ 'प्रेमाश्रम' के ठाकुर असामी जमींदार तक की जमीन हड़प लेने का हौसला रखते हैं. प्रेमचंद इस 'सोशल ट्रेनिंग' को कहीं भी नजरअंदाज नहीं करते. उनके पात्रों का ध्यान से अध्ययन करने पर यह बात बहुत साफ तौर पर दिखाई पड़ती है.

पिछड़ी जाति के किसान तमाम अभावों के बावजूद मनुष्यता का दामन नहीं छोड़ते**.** ऐसा नहीं है कि ये किसी ऊंचे आदर्श का पालन करने के लिए सायास ऐसा करते हैं, बल्कि यह तो इनका स्वभाव है. किसान के खेत में काम करने वाला दलित मजदूर भी मनुष्य है, उसे भी भूख-प्यास लगती है, थकान होती है- इस बात की चिंता और समझ पिछड़ी जाति के किसान को तो है लेकिन किसी ऊंची जाति वाले व्यक्ति के मन में नहीं है, चाहे वह जमींदार हो या तथाकथित किसान.
'प्रेमाश्रम' में मनोहर के खेत में काम करने वाले रंगी दलित के लिए बलराज (मनोहर का बेटा) की चिंता में मनुष्यता का वह सहज रूप दिखाई पड़ता है. मनोहर, बलराज और रंगी एक साथ बैठकर खाना खा रहे हैं. बलराज की मां बिलासी केवल बलराज के लिए दूध लाती है तो वह अपनी मां से नाराज होकर कहता है-

'…जो हमसे अधिक काम करता है उसे हमसे अधिक खाना चाहिए. हमने तुमसे बार-बार कह दिया है कि रसोई में जो कुछ थोड़ा-बहुत हो, वह सबके सामने आना चाहिए. अच्छा खाएं, बुरा खाएं तो सब खाएं… रंगी कोई बेगार का आदमी नहीं है, घर

का आदमी है. वह मुंह से चाहे न कहे, पर मन में अवश्य कहता होगा कि छाती फाड़कर काम मैं करूं और मूछों पर ताव देकर खाएं यह लोग. ऐसे दूध-घी खाने पर लानत है.'

जैसे आग में तपकर सोना और भी चमक उठता है, उसी तरह अभावों में तपकर यह मनुष्यता और भी गरिमामयी हो उठती है. लेकिन ऐसी मनुष्यता प्रेमचंद के उपन्यासों में ऊंची जाति के पात्रों को कहाँ नसीब ! 'गोदान' के रायसाहब ऊपर-ऊपर किसानों-मजदूरों के हमदर्द बनते हैं, बड़े-बड़े आदर्श बघारते हैं, लेकिन जब उनका चपरासी आकर सूचना देता है कि 'बेगारों ने काम करने से इंकार कर दिया है. कहते हैं जब तक हमें खाने को न मिलेगा हम काम न करेंगे. हमने धमकाया तो सब काम छोड़कर अलग हो गए', तब यह सुनकर 'रायसाहब के माथे पर बल पड़ गए.[15,16]

आंखें निकालकर बोले- चलो मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूं. जब कभी खाने को नहीं दिया, तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने रोज के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है; और इस मजूरी पर काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े.' प्रेमचंद कितनी सूक्ष्मता और कुशलता से यह भी बता देते हैं कि रायसाहब के यहां बेगारों का भूखे-प्यासे खटना कोई आज की बात नहीं है- 'जब कभी खाने को नहीं दिया...' – यह तो हमेशा की बात है ! यह है ऊंची जाति के (ठाकुर) जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह की मनुष्यता !

इसी तरह 'गोदान' में उस प्रसंग को भी देखा जा सकता है जब होरी दातादीन के खेत में मजदूरी करने पर मजबूर हो जाता है और दातादीन उससे भूखे-प्यासे इतना काम लेता है कि वह बेहोश हो जाता है. पिछड़ी जाति के पात्रों की मनुष्यता और ऊंची जाति के पात्रों की मनुष्यता(!) के अंतर के उदाहरण प्रेमचंद के उपन्यासों में भरे पड़े हैं. प्रेमचंद ने अपने निबंध 'उपन्यास' में लिखा है –

'वह (साहित्यकार) हमारा पथ प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है... इस मनोरथ को सिद्ध करने के लिए जरूरत है कि उसके चरित्र positive हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकाएँ, बल्कि उनको परास्त करें, जो वासनाओं के पंजे में न फँसें, बल्कि उनका दमन करें; जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके विजय-नाद करते हुए निकलें, ऐसे ही चरित्रों का हमारे ऊपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है.'

'हमारे मनुष्यत्व को जगाने वाले', 'हममें सद्भावों का संचार करने वाले' और हमें प्रभावित करने वाले ऐसे कितने चरित्र प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलते हैं, जो ऊंची जाति के हों ? संभवतः एक भी नहीं. क्या यह महज एक संयोग है कि प्रेमचंद के तमाम आदर्श पात्र-नायक-पिछड़ी या दलित जाति के हैं ? या फिर यह भारतीय समाज की जातिवादी संरचना की गहरी समाजशास्त्रीय समझ है ? दरअसल यह वह प्रस्थान बिंदु है, जहां से प्रेमचंद के साहित्य का समाजशास्त्र विश्लेषित और व्याख्यायित होता है.प्रेमचंद के किसान भारत के वास्तविक किसान हैं जिनके चरित्र की बारीकियों को बिल्कुल ठीक-ठीक पहचाना है प्रेमचंद ने. पिछड़ी जाति के किसान के चरित्र को 'सुजान भगत' कहानी के सुजान महतो के चरित्र के आधार पर भी देखा-समझा जा सकता है. प्रेमचंद लिखते हैं- 'सीधे-सादे किसान धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं.

दिव्य समाज की भांति वह पहले अपने भोग-विलास की ओर नहीं दौड़ते...घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कंठ तले एक बूंद भी जाने की कसम थी...किसान को दूध-घी से क्या मतलब, उसे रोटी और साग चाहिए. सुजान की नम्रता का अब पारावार न था. सबके सामने सिर झुकाए रहता, कहीं लोग यह न कहने लगें कि धन पाकर उसे घमंड हो गया है.' धर्मभीरुता, सादा जीवन, नम्रता और लोकभीरुता प्रेमचंद के किसान के चरित्र का जैसे श्रृंगार हैं.प्रेमचंद के कथा साहित्य में पिछड़ी जाति का शायद ही कोई ऐसा किसान पात्र [17,18]हो जो उपर्युक्त चारित्रिक श्रृंगारों से युक्त न हो ! 'पूस की रात' का हल्कू, 'बाबाजी का भोग' का रामधन अहीर, 'अलग्योझा' का रग्घू, 'सभ्यता का रहस्य' का दमड़ी आदि ऐसे ही पिछड़ी जाति के किसान चरित्र हैं. प्रेमचंद के किसान 'मरजाद' पर जान देने वाले किसान हैं.ये किसान बड़े किसान नहीं हैं, बल्कि पांच, दस या अधिक-से-अधिक बीस बीघे जमीन में खेती करने वाले किसान हैं, जिन पर ऊंची जाति के जमींदारों का दबदबा है. ये छोटे किसान जमींदार को लगान चुकाने के बाद मुश्किल से इतना अनाज बचा पाते हैं कि दो जून की रोटी नसीब हो जाए और कभी-कभी तो उतना भी नहीं बचता. ये छोटे किसान सोच-विचार करते हैं, जोड़-घटाव करते हैं कि इस खेती में बचा ही क्या है ? इससे तो मजदूरी अच्छी है. लेकिन जो बात इन किसानों को मजदूर बनने से रोकती है वह 'मरजाद' ही है. 'मरजाद' की चिन्ता न होती तो कब का ये किसानी छोड़कर मजदूर बन गए होते. मगर मजदूर बन जाना अपनी सामाजिक हैसियत से च्युत हो जाना है.कारण यह कि मजदूरी तो नीची जाति के लोगों का काम है. इसके अलावा जब तक खेती कर रहे हैं तब तक सारी आर्थिक तंगी के बावजूद किसी के नौकर तो नहीं हैं. मजदूरी से आर्थिक तंगी भले थोड़ी कम हो जाए मगर वह आजादी और 'मरजाद' तो न बचेगी. 'सभ्यता का रहस्य' कहानी में दमड़ी की चिंता इसी 'मरजाद' को बचाए रखने की है-

'लेकिन मौरूसी किसान मजदूर कहलाने का अपमान न सह सकता था. इस बदनामी से बचने के लिए दो बैल बाँध रखे थे ! उसके वेतन का बड़ा भाग बैलों के दाने-चारे में ही उड़ जाता था. ये सारी तकलीफें मंजूर थीं, पर खेती छोड़कर मजदूर बन जाना मंजूर न था. किसान की जो प्रतिष्ठा है, वह कहीं मजदूर की हो सकती है, चाहे वह रुपया रोज ही क्यों न कमाए ?'

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

दरअसल, 'मरजाद' प्रेमचंद के किसानों का नैतिक बल है. वह सब कुछ खोकर भी इस 'मरजाद' को बचाकर रखना चाहता है तो सिर्फ इसलिए कि गांव-बिरादरी में मुंह दिखाने लायक बचा रहे. यहां रामविलास जी की इस बात से असहमत होने का आधार बनता है कि प्रेमचंद के किसानों की मूल समस्या आर्थिक (ऋण की समस्या) है. बल्कि ऋण का बोझ तो इन किसानों की मूल समस्या से निबटने की कोशिश का परिणाम है. इस किसानों की मूल समस्या है 'मरजाद' की रक्षा.
डा. कमलेश वर्मा के जिस लेख की चर्चा शुरुआत में की गई है, उसमें उन्होंने मरजाद-रक्षा के इस पक्ष को भी उठाया है. डा. वर्मा लिखते हैं-

'गोदान' ही नहीं प्रेमचंद के पूरे कथा-साहित्य में किसान की मूल समस्या मरजाद को बचाए रखने की समस्या है. यदि वह मरजाद की चिंता नहीं करता तो ऋण की समस्या उसके सामने नहीं आती.' प्रेमचंद के लिए किसानों की यही मरजाद की चिन्ता उनकी मनुष्यता की सबसे बड़ी कसौटी है. 'मरजाद' प्रेमचंद के लिए दरअसल एक प्रकार की नैतिकता है, जिस पर वे मनुष्यता को परखते हैं.
इस बात पर ध्यान देने की ज़रूरत है कि 'मरजाद' की चिन्ता प्रायः पिछड़ी जाति के छोटे किसानों को है. ऊंची जात के लोगों, जमींदारों को कुलीनता की चिन्ता तो है पर मरजाद की चिन्ता नहीं है. कुलीनता और मरजाद में बुनियादी फर्क है.
कुलीनता की चिन्ता व्यक्ति को कट्टर, अनुदार और अमानवीय बनाती है, जबकि मरजाद की चिन्ता उसे सहिष्णु, उदार और मानवीय बना देती है. कुलीनता का भाव घमंड को जन्म देता है, मरजाद की चिन्ता स्वाभिमान की रक्षा की चिन्ता है. कुलीनता वर्णाश्रम के सिद्धांतों को मनुष्यता से ऊपर रखती है, मरजाद के लिए पहली और आखिरी कसौटी मनुष्यता है, भाईचारा है. यह अकारण नहीं है कि प्रेमचंद के लिए ऐसी कुलीनता दो कौड़ी की चीज है, त्याज्य है और दूसरी तरफ 'मरजाद' अनमोल है, वरेण्य है.यही मनुष्यता, सहृदयता और सदाशयता पिछड़ी जाति के किसानों में है. 'गोदान' में दो ऐसे प्रसंग आते हैं, जहां कुलीनता और बिरादरी की परवाह किए बिना होरी और धनिया सहज मनुष्यता की रक्षा करते हैं. पहला प्रसंग है जब गर्भवती झुनिया होरी के घर आ जाती है. होरी और धनिया के लिए बहुत आसान था कि झुनिया को लात मारकर भगा दें और बिरादरी में अपनी नाक बचाए रखें. इसके विपरीत झुनिया को अपने घर में आश्रय देना बेवजह संकट और आफत को न्योता देना था. पहला मार्ग अत्यंत सरल था, दूसरा उतना ही संकटपूर्ण लेकिन मनुष्यता का मार्ग तो दूसरा ही था.होरी और धनिया कभी भी अपनी मनुष्यता नहीं छोड़ सके. भले बिरादरी-बाहर हो गए, डांड़ भरना पड़ा- भरा, लेकिन मनुष्य बने रहे. पिछड़ी जाति का किसान मनुष्यता और सहृदयता को कुलीनता से ज्यादा बड़ा मूल्य समझता है. इसकी रक्षा में कुलीनता चली जाए, कोई परवाह नहीं. धनिया दातादीन से आत्मविश्वास और गर्व के साथ कहती है-

'हमको कुल-परतिसठा इतनी प्यारी नहीं महराज, कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते...बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं.'
दूसरा प्रसंग है सिलिया का पंडित मातादीन द्वारा ठुकराया जाना और फिर होरी-धनिया द्वारा उसे अपने घर में आश्रय देना. पंडित मातादीन सिलिया को धोखे में रखकर उसका यौन-शोषण करता है. सिलिया मातादीन से प्रेम करती है, लेकिन मातादीन के लिए सिलिया उसकी यौन तृप्ति के साधन और बेगार मजदूर के अलावा कुछ नहीं है. प्रेमचंद लिखते हैं- 'सिलिया का तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था. सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछ नहीं.'मातादीन जैसे ब्राह्मण की नैतिकता यह है कि वह सिलिया चमारिन के साथ संभोग तो कर सकता है, मगर वह उसके घर के भीतर नहीं जा सकती, उसके हाथ का छुआ मातादीन कुछ खा नहीं सकता. मातादीन सिलिया से केवल लेता है, बदले में उसे कुछ नहीं देता और उसे छोड़ भी देता है- लाचार, बेसहारा.पुनः इस अवसर पर सिलिया को आश्रय मिलता है पिछड़ी जाति के किसान होरी के घर में. होरी को सिलिया से कुछ नहीं मिलता है. हां, बिरादरी में बदनामी जरूर होती है लेकिन तब भी उसकी सहृदयता और मनुष्यता का तकाजा यह है कि बेसहारा सिलिया को घर से कैसे निकाल दे !प्रेमचंद बार-बार पिछड़ी जातियों के किसान पात्रों को ऊंची जातियों के पात्रों के विपरीत मनुष्यता के ऊंचे आसन पर बिठाते हैं. क्या यहां से प्रेमचंद के साहित्य के समाजशास्त्र का कोई वातायन नहीं खुलता

विचार-विमर्श

गोदान के होरी, धनिया और गोबर, मीना दादी के लिए ईद पर चिमटा खरीदता अब्दुल, प्रसव-पीडा से कराह रही धनिया, लाचार व मदमस्त मदिरा पीते बाप बेटे घीसू और माधव, ठाकुर के कुएं पर पानी भरने गई गंगी, पूस की रात में खेत पर कांप रहा हलकू साथ में कूं कूं करता उसका संगी कुत्ता जबरा, अपने दो बैलों हीरा और मोती को प्यार से सहलाता झूरी और तमाम ऐसे चरित्रों के सृजक आज भी अपनी कहानियों के माध्यम से हमारे बीच हैं! मशहूर-ओ-मा' रूफ़, कहानीकार मुंशी प्रेमचंद।एक लेखक के विचार उनकी कहानियों में हमेशा ज़िंदा रहते हैं। कहानियां, जो प्रभावित होती हैं हमारी दुनिया से। वहीं कहानियां और विचार एक लेखक की विरासत होती है। समय के साथ कई चीज़ें बदल जाती हैं, पर कुछ कहानियां आज भी यथार्थ लगती हैं। प्रसिद्ध लेखक धनपत राय,

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

जिन्हें हम प्रेमचंद के नाम से जानते हैं, भी ऐसी ही एक शख्सियत हैं जिनके लेख आज भी लाखों दिलों में ज़िंदा हैं।वे एक सफल लेखक, कुशल वक्ता, ज़िम्मेदार संपादक और संवेदनशील रचनाकार थे। प्रेमचंद ने अपने विचार अलग-अलग साहित्य रूपों में अभिव्यक्त किए। वह बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। प्रेमचंद की रचनाओं में उस समय की सामाजिक स्थितियां झलकती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया है। उनकी कृतियां भारत के जन सामान्य और विविध जाति-वर्ग की कृतियां हैं। प्रेमचंद अपनी कहानियों से मानव-स्वभाव की आधारभूत महत्ता पर बल देते हैं।कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के सिरमौर माने जाते हैं। 1906 से 1936 के बीच लिखा गया प्रेमचंद का साहित्य इन तीस वर्षों का जीता-जागता सामाजिक सांस्कृतिक दस्तावेज़ है। इसमें उस दौर के समाजसुधार आन्दोलनों, स्वाधीनता संग्राम तथा प्रगतिवादी आन्दोलनों के सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट चित्रण है। उनमें दहेज़, बिन मेल की जोड़ियों का विवाह, लगान, छूआछूत, जाति भेद, विधवा विवाह, आधुनिकता, स्त्री-पुरुष असमानता, आदि उस दौर की सभी प्रमुख समस्याओं का चित्रण मिलता है। राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान मौजूद सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को भी उन्होंने अपनी कहानियों में प्रतिबिंबित किया। भारतीय साहित्य का बहुत सा विमर्श, जो आज भी प्रासंगिक है जैसे दलित साहित्य या नारी साहित्य उसकी जड़ें भी प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देती हैं।हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करने के लिए जाने जाने वाले प्रेमचंद ने आम आदमी के जीवन में आने वाली परीक्षाओं और समस्याओं को एक नया रूप प्रदान किया। उन्होंने मानवीय भावनाओं और कहानी कहने की कला को नए सिरे से परिभाषित किया।[19]

प्रेमचंद भारत में किसानों के बारे में उस भाषा में लिखने वाले पहले महत्वपूर्ण लेखक थे, जो सामान्य जन की भाषा थी। उन्होंने विदेशी शासन के खिलाफ संघर्ष के तीन दशकों के महत्वपूर्ण इतिहास को भी रेखांकित किया है। प्रेमचंद का लेखन ना केवल राष्ट्रवादी आंदोलन का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है बल्कि इस समय की किसान स्थितियों का भी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। उनका उपन्यास एक ऐतिहासिक रिकॉर्ड जैसा है और इस अवधि के सामाजिक इतिहास का पूरक है। उन्होंने तीन सौ से अधिक कहानियां, सत्रह उपन्यास, आत्मकथाएं, नाटक और बहुत से लेख लिखे साथ ही टॉल्स्टॉय और गोर्की जैसे लेखकों की रचनाओं का अनुवाद भी किया। उनका यह साहित्य, कल्पना के रूप में जितना अधिक प्रभावी है, उतना ही विश्वसनीय यह समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ के रूप में भी स्थापित है।

उनका मानना था कि 'साहित्य किसी एक व्यक्ति या उसके अहंकार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हमारे मन मस्तिष्क और समाज को अधिक-से-अधिक बदलने की ओर अधिक झुका है।' साहित्य व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता इसके विपरीत यह व्यक्ति को समाज के अभिन्न अंग के रूप में देखता है!

परिणाम

आधुनिक कला के स्ववरूप पर प्रेमचंद ने अत्यंत सारगर्भित विचार व्यक्त किये हैं – 'मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूं निस्संदेह कला का उद्देश्य सौहार्द पुष्टि करना है। वह हमारे आध्यात्मिक आनंद की कुंजी है' लेकिन आज कला नाम है संकुचित पूजा का, शब्द योजना का, भाव निबन्धन का, कोई आदर्श नहीं, भक्ति-वैराग्य-आध्यात्म, दुनिया से तटस्थता उसकी ऊंची कल्पनाएं हैं, ऐसी कला जनजीवन को नव प्रेरणा नहीं दे सकती, वह चिरंतन सौंदर्य की निष्प्राण प्रतिमा की तरह व्यर्थ रहती है। ऐसे कलाकार की दृष्टि इतनी व्यापक नहीं कि जीवन संग्राम में सौंदर्य का चरमोत्कर्ष देखे, उसके लिए सौंदर्य का सुंदर स्त्री के रंगे होंठों, कपोलों व कटीली भौंहों में वास है–उस बचचे वाली गरीब, रूप रहित स्त्री में नहीं जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाए कड़ी दोपहरी में पसीना बहा रही है–उसके उलझे रूखे बालों, पपड़ियां पड़े होठों व कुम्हलाए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहां? इस संकीर्ण दृष्टि में अगर विस्तार आ जाए तो देख सकेगी रंगे होठों व कपोलों की आड़ में रूप गर्व व निष्ठुरता छिपी है तो मुरझाए होठों, कुम्हलाए गालों पर बहते आंसुओं में त्याग, श्रद्धा, कष्ट सहिष्णुता छलक रही है'। इसलिए आगे लिखा – 'साहित्यकार पैदा होता है, बनाया नही जाता। उसका लक्ष्य केवल महफिल सजाना व मनोरंजन के साधन जुटाना नहीं, वह देश भक्ति राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं अपितु उनके आगे मशाल दिखाती सच्चाई है। प्रभुत्व, अन्याय, आत्म-सर्वस्वता के विरूद्ध मानव के मन में जो विद्रोह जल उठता है वही साहित्य है। लेखक का काम उस विद्रोह को जन भाषा में रूपांतरित करना है और हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की प्रेरणा हो जो हममें गति व संघर्ष, बैचेनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि सोना मृत्यु का लक्षण है।'और विस्तार से प्रेमचंद के विचार इन शब्दों में रूपाकार लेते हैं–'भावोत्तेजक कला का मौसम अब नहीं रहा, स्थितिनुरूप सामान्यजन को अब उस कला की जरूरत है, जिसमें जटिलताओं से जूझने का क्षमता हो, जो समस्या को उभार सके, कर्म का संदेश दे, जिससे हमें अपनी दूषित अवस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन अन्त:-बाहरी कारणों से हम निर्जीवता व ह्रास की अवस्था तक पहुंच गये हैं, उन्हें दूर करने की कोशिश करें।'

सपष्टत: सौंदर्यानुभूति, साहित्य व कला के प्रति उपयोगी दृष्टि, कर्मशीलता का संदेश व सुप्त जनचेतना में जागरूकता का एहसास जगाना, सभी विशेषताएं प्रेमचंद की कहानी कला में अत्यंत मुखर हुई। साहित्य पर सर्वत्र शिव का शासन रहा – सत्य व सुंदर शिव के अनुचर होकर आये और कला इनके लिए स्वीकृत रूप से जीवन के लिए थी, जिसका ध्येय था–सामान्य लोक हित-

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

चिंतन। प्रेमचंद का यह कहना कितना अर्थगर्भित व सटीक है–'सूखी रोटियां सोने के थालों में परोस देने से पूरियां नहीं बन जाती' अर्थात जीवन में जो कुछ सत्य-शिव-सुंदर है उसी को दर्शाना मुख्य उद्देश्य रहा पर यथार्थ चित्रण हेतु साहित्य की उपयोगिता को तिरस्कृत नहीं किया। सदैव सत्य व न्याय की विजय चाही, यदि यथार्थवाद से यह विजय असंभव लगती वहां आदर्श से समझौता कर सुधारवाद व हृदय परिवर्तन द्वारा विजय घोषित करने से परहेज नहीं करते। आलोचकों ने इस समझौतावादी प्रवृत्ति को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का नाम दिया। इन्होंने कहानियों में समस्याएं उकेरी, कारण दूषित व्यवस्था में खोजा, समाधान आदर्शवाद में ढूंढ़ा।पर दूसरी ओर समीक्षकों को यह तथ्य भी विस्मृत नहीं करना चाहिए कि प्रेमचंद का आदर्शवाद मानवतावाद से परिचालित था ताकि दुखी-पीड़ित सामान्यजन जीवन जटिलताओं के प्रति आकर्षित हो व कटुता को मिटाने का प्रयास करे यानि जो काम समाज द्वारा संभव नहीं वो कहानियों द्वारा संभव हो पाया। उनका दृढ़ विश्वास था–'मनुष्य के लिए कुछ भी असंभव नहीं यदि मानव पतन के गर्त में गिर सकता है तो आकाश गंगा में भी नहा सकता है'। यही है प्रेमचंद के स्थापन का रहस्य। लेकिन आदर्श की यह विजय इतनी भी शक्तिशाली नहीं कि वो जीवन के यथार्थ को कहानियों के पृष्ठों से हटा सका हो क्योंकि जहां कहीं अस्वाभाविक सिद्धांतों का प्रतिपादन करने हेतु यथार्थ का दामन छोड़ा, वहीं कृत्रिमता आयी व मनोविज्ञान हाथ से फिसला।[18,19]

धीरे-धीरे स्थितियों में आये बदलाव से टूटती मान्यताओं, जिंदगी की ठोकरों, संघर्षों से उपजे निजी कटु अनुभवों व परिपक्वता ने जीवन के अंतिम पर्व में आदर्शवादी प्रवृति को सर्वथा असंगत व अप्राकृतिक परिभाषित कर दिया तो वे तत्काल इससे दामन छुड़ाने को व्यग्र हो उठे। 'कफ़न' संग्रह की कहानियां इसी व्यग्रता की सूचक हैं। प्रेमचंद ने साफ महसूस किया कि बुराइयां आदर्शों के कृत्रिम आवरण में ढक दी जातीं, पर समाप्त होने की बजाय नीचे बराबर पलती रहतीं और पहले से भी ज्यादा भयंकर रूप धारण कर लेतीं। ये भी जाना कि समाज के बनाये सिद्धांत अटल नहीं वरन् अर्थगत दबावों से बनते-बिगड़ते, टूटते हैं। साम्प्रदायिकता, अस्पृश्यता, किसानों की दरिद्रता इन सभी को सन् 1930-32 के असहयोग व सविनय आंदोलन के उपरांत भी फलते-फूलते देखा।कह सकते हैं कि कटु अनुभवों, कठोर यथार्थ-घटनाओं के झटकों ने प्रेमचंद के गांधीवाद में दरारें ही नहीं गढ़े डाल दिये। इस पेड़ की सूखी टहनियों के पत्ते 'पूस की रात' में नीलगायों द्वारा खेत में चरने पर हल्कू के होठों पर उभरी विद्रूप हंसी से झर चुके थे और मुरझा चुके थे। गाढ़ी कमाई कफ़न के पैसों से सदियों से अतृप्त भूख को शांत कर रहे, मदमस्त होकर नाच रहे 'कफ़न' कहानी के घीसू, माधव के नग्न यथार्थ से।

अन्ततः प्रेमचंद की मान्यता इस निष्कर्ष पर स्थिर हुई कि 'साहित्य की सृष्टि मानव समुदाय को आगे बढ़ाने के वास्ते होती है, साहित्यकार स्वयं भी स्वभावतः प्रगतिशील होता है... आदर्श अवश्य हो, पर यथार्थवाद व स्वाभाविकता के अनुकूल हो, वैसे ही अगर यथार्थवादी भी आदर्श को न भूले तो श्रेष्ठ है।'आदर्श व यथार्थ का अपूर्व समन्वय विशेषरूप से प्रेमचंद की ऐतिहासिक रचनाओं में उपलब्ध हुआ जहां वे त्याग, बलिदान, सेवा, उदारता जैसे आदर्श भावों के स्थापन हेतु देश के राष्ट्रीय इतिहास की छानबीन कर राजपूत स्त्री पुरुषों के प्रशस्ति गान व मुगलों के ह्रासोन्मुख वैभव का दिग्दर्शन करवाते हैं, पर यह ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्राचीन वैभव का गुणगान नहीं करता, उन्हें पुनरूत्थानवादी घोषित नहीं करता, अपितु समसामयिक यथार्थ की व्याख्या के परिप्रेक्ष्य में उभरा है। प्रेमचंद का स्वयं का कथन इसी तथ्य की पुष्टि करता है–'हम तारीख से यह सबक न लें कि हम क्या थे, यह देखें कि क्या हो सकते थे, भूत हमारे भविष्य का रहबर नहीं बन सकता' (कुछ विचार) सामान्यजन को समसामयिक जन संघर्षों से जूझते दिखाना ही वास्तविक साहित्यिक व सांस्कृतिक सेवा है। दूसरी ओर अतीत के सजीव स्वरूप व प्रसंगों को जहां ग्रहण किया वहीं निर्जीव व गले-सड़े का त्याग करना श्रेयस्कर समझा।उदाहरणार्थ–राजपूतों की वीरता, उदारता व त्याग की जहां स्तुति की वहीं व्यक्तिवाद व अहंवाद की घोर निंदा की। अहंकार का यह विकृत रूप राजा हरदौल, शतरंज के खिलाड़ी, बड़े भाई साहब व रानी सारन्धा में सार्थक ढंग से उभरा है।

विषयवस्तु या कथ्य :–प्रेमचंद आधुनिक कहानी की पूर्ववर्ती कहानी से सर्वथा भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार–'प्राचीन कथा शिक्षाप्रद, धार्मिक, मनोरंजन व कौतूहल दर्शाती थी, पर सीमित मात्रा में इसके विपरीत आज की कहानी पात्रों के मनोविश्लेषणात्मक चित्रण द्वारा ही सार्थकता पाती है' इसलिए जनसाधारण की समस्याएं, आकांक्षाएं, उलझनें व पारिवारिक गुत्थियों की विस्तृत झांकी संयुक्त परिवार विघटन, अलगाव-विधवा विवाह, दहेज प्रथा, बाल-विवाह, राष्ट्र-द्रोह, घूसखोरी, बहु-विवाह, अंधविश्वास, ग्रामीण शोषण, आर्थिक वैषम्य, अनमेल विवाह, वेश्यावृति, बुर्जआ-मनोवृति, राष्ट्रीय जागरण, धर्म पर टिकी राजनीति व महाजनी सभ्यता की अमानवीयता इन सभी विषयों को आत्मीयता से समेटे हुए हैं व पात्रों के रूप पाठकों से भावनात्मक नाता जोड़ती हैं।भारतीय जन चेतना में आया असाधारण परिवर्तन भी रचनाओं में लिपिबद्ध हुआ–विशेषरूप से किसानों के विभिन्न प्रकार के भावों–राग द्वेष, दुःख, संघर्षों, रीति-रिवाजों, उत्सवों, त्योहारों, समस्याओं से द्वन्द्व की जुझारू प्रवृति यानि प्रत्येक इतिवृत को सहानुभूतिपूर्ण सस्नेह कहानियों में सहेजा। विख्यात साहित्य–सेवी श्री रामदास गौड़ लिखते हैं। 'भविष्य में भारतीय साहित्य के इतिहास के नये रचनाकार जब भी सृजन करेंगे, उन्हें जीवन के यथार्थ चित्रण में प्रेमचंद की दक्षता स्वीकार करनी ही पड़ेगी।'प्रेमचंद के संपूर्ण कहानी साहित्य पर आर्थिक समस्याओं का प्रभुत्व कायम रहा, पर अर्थ वैषम्य जीवन की ग्रंथि नहीं बना वह एक समस्या है जिसका समाधान भी उपस्थित है। पात्र अर्थगत दबावों से बेशक पीड़ित हैं पर वे बाहरी संघर्ष द्वारा समस्याओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, मानसिक कुष्णाओं का शिकार बनकर नहीं रह जाते जैसा कि 'कफ़न'

कहानी में कुशल सृजन शक्ति व प्रत्यक्ष भोगे अनुभवों से लेखक स्थितियों के भंवर में फंसे मानव व जीवन मूल्यों के टूटन की व्यथा-कथा को बेहद प्रभावशाली ढंग से मनोविज्ञान के धरातल पर उभारा है। गरीबी और भूख ग्रामीण परिवेश की नग्न सच्चाइयां हैं जिसको 'कफन' में उघाड़कर प्रेमचंद दूषितसामाजिक व्यवस्था, रूढ़ियों, अंधविश्वासों व धार्मिक मूल्यों को नकारा है व सशक्त भाव बोध जगाया है। इस क्रम में पूस की रात, सवा सेर गेहूं, नमक का दारोगा, ठाकुर का कुआँ, सद्गति जैसी कहानियां शामिल हैं। ये कालजयी रचनाएं अनुभव की प्रौढ़ता, आत्मविश्वास, व स्वाभाविक सौंदर्य से विकसित हुई हैं।

विषयवस्तु का स्वरूप प्रेमचंद इन शब्दों में निर्धारित करते हैं – 'कहानी में जो सामग्री उत्पन्न हो वह नग्न यथार्थ न होकर यथार्थ जैसी लगनी चाहिए क्योंकि उसका पटल अत्यंत संक्षिप्त होता है जबकि नग्न यथार्थ वितृष्णा उपजाता है। पात्र अपने जीवन में कभी सुख कभी दु:ख की अनुभूति करता है तो इसका प्रस्तुतिकरण लेखक कलात्मक व औचित्यपूर्ण ढंग से करे जिससे पाठक भी सहमत हों। साहित्यिक न्याय इसे ही कहते हैं।'इस क्रम में आगे लिखते हैं – 'कहानी संक्षिप्त हो, पर रोचक हो, वर्णनों में गति हो, सर्वांगपूर्ण हो। एक ही बैठक में सुने जाने योग्य हो। पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ समाज-निर्माण में भी सहायक हो। उसमें ऐसी सामग्री विद्यमान हो जो पथ-प्रदर्शन करने के साथ-साथ मन में सुंदर भाव व आत्म संतुष्टि जगा सके।'

प्रेमचंद घटना प्रधान कहानियों के स्थान पर चरित्र प्रधान कहानियों को अधिक महत्व देते हैं अर्थात एक कहानी में एकल घटना व समस्या पर दृष्टि केंद्रित होते हुए भी सशक्त चरित्रांकन द्वारा ही प्रभावी कथा का निष्कर्ष मानना चाहिए, जैसे अलग्योझा कहानी में पारिवारिक अलगाव, ईदगाह में बाल मनोविज्ञान, नशा धनी वर्ग की स्वार्थपूर्ण मनोवृति, ठाकुर का कुआँ में सामाजिक अन्याय, सवा सेर गेहूं व पूस की रात में महाजनी सभ्यता का विकराल रूप, ऋण की भीषण समस्या व बेटों वाली विधवा में बेटों का छल प्रपंच और बुर्जुग पीढ़ी के अकेलेपन का दर्द-व्यथा बूढ़ी काकी में यानि कि भिन्न–भिन्न समस्याओं के व्यक्तिकरण में सजीवता व प्रभाव से युक्त पात्रों के बाहरी संघर्ष व मानसिक अंद्वन्द्व की सूक्ष्मता से आई है।[16,17]

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियां तीन कालों में विभक्त हैं :

(1) आरम्भ काल

(2) विकास काल

(3) उत्कर्ष काल।

'सप्तसरोज' तथा 'प्रेम पचीसी' में संग्रहीत कहानियां जैसे पंच परमेश्वर, सौत, नमक का दारोगा, रानी सारन्धा, मर्यादा की बेटी, ममता, अमावस्या की रात प्रारम्भ काल में लिखी गयीं जो कथ्य शैली की दृष्टि से इतिवृतात्मक, आदर्शवादी व परिचयात्मक हैं। यहां कहानी की संवेदनाएं किसी एक भाव बिंदु पर केंद्रित नहीं अपितु अनेक इकाइयों, चरित्र, घटनाओं, रस का जाल बुनती हुई चलती हैं। व्याख्या का अंश ज्यादा है।विकास काल की कहानियां आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी, कथ्य की दृष्टि से सुगठित, संक्षिप्त व कलात्मक रूप से अधिक निखरी हुई हैं। 'प्रेम-प्रसून', 'प्रेम-द्वादशी' में संकलित इस दौर की कहानियों मैंकू, माता हृदय, शाप, हार की जीत, बूढ़ी काकी, मुक्ति का मार्ग, वज्रपात में पात्रों का अन्त:संघर्ष सजीवता व मानवीय तत्वों को उभारता है। आत्मकथात्मक, आत्म-विश्लेषणात्मक, भाषण, नाटकीय व रूपात्मक आदि शैलियों के विविधतापूर्ण व्यापक रूपों की सृष्टि कहानियों में हुई।पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व जीवन के यथार्थ चित्रण को सहेजे उत्कर्ष काल की कहानियां कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कल्पना व व्याख्या का अंश कम, संवेदन तत्व जीवन से आत्मीयपूर्ण निकट परिचय पाने को यहां उत्सुक है। घटनाओं की अपेक्षा पात्र चरित्र व चित्रण व उनके द्वारा प्रतिपादित जीवन दर्शन ज्यादा महत्वपूर्ण है। भाषा शैली प्रवाहमयी, अर्थगर्भित व मर्मस्पर्शी है। सद्गति, दो बहनें, नशा, मिस पद्मा, ईदगाह, आत्माराम, मनोवृति, दो बैलों की कथा, जुर्माना, ठाकुर का कुआँ, पूस की रात व कफ़न इस काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। जो विकसित कहानी कला का चरम निदर्शन हैं।आधुनिक कहानीकारों की तरह प्रेमचंद की कहानियां विदेशीपन से परिचालित नहीं अपितु विशुद्ध भारतीय संस्कृति की व्यापकता को सहेजे हुए हैं। तभी तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी यह कहने को बाध्य हुए – 'प्रेमचंद के कथा साहित्य अध्ययन से उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, आशा-आकांक्षा, दु:ख-दर्द, रीति-रिवाज़ों को जान सकते हैं। झोपडियों से महलों तक, खोमचे वालों से बैंकों तक, गांव से शहर की रंगीनियों तक, अमीरों से कृषकों तक आपको इतने कौशलपूर्वक व प्रामाणिक भाव से अन्य कोई नहीं ले जा सकता। इतनी विविधता अन्यत्र नहीं मिलेगी।'वास्तव में गांधी युग के प्रथम तीन चरणों के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक जीवन के सभी पहलुओं व समस्याओं का जितना सांगोपांग, विशुद्ध चित्रण प्रेमचंद में उपलब्ध है वैसा अन्य कहानीकार में नहीं। विशाल हृदय में जीवन के सभी रूपों के प्रति राग था, मानव के सभी रूपों के प्रति ममत्व था उनकी प्रतिभा कई अंशों में महाकाव्यकार की प्रतिभा थी। विविध वर्ग, जाति, स्वभाव, संस्कार, सामाजिक स्थिति, व्यवस्था आदि के जितने पात्र प्रेमचंद में मिलते हैं औरों में नहीं।अन्य कहानीकारों जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर से तुलना

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

करें। एक ओर विशाल अथाह जन समुद्र है तो दूसरी ओर व्यक्तित्वों के सरोवर मात्र। तभी तो आचार्य द्विवेदी को कहना पड़ा – 'आज भी प्रेमचंद जहां हमें छोड़कर कर गये थे, वहां से आगे हम बढ़ नहीं पाये।'

पात्र चरित्र चित्रण :–मानव चरित्र की रूपरेखा प्रेमचंद के शब्दों में – 'मानवीय चरित्र इतना जटिल है कि बुरे से बुरा आदमी भी देवता हो जाता है और अच्छे से अच्छा आदमी पशु। पर वास्तव में मानव स्थितियों के हाथ का खिलौना मात्र है अर्थात मानव चित्रण की यह जटिलता स्थितियों की जटिलता का प्रतिबिम्ब है'। इसलिए प्रेमचंद रचनाओं में चरित्रगत विशेषता को परिस्फुट करने हेतु विभिन्न भावों के घात-परिघातों के साथ जीवन की घटनाओं, संघर्षशील स्थितियों को इस तरह समंजित कर देते हैं कि जान नहीं पड़ता कि कहानी घटना प्रधान है या चरित्र प्रधान। यही कारण है कि प्रेमचंद के पात्रों को न परिचय की जरूरत है न व्याख्या की, चरित्र का विश्लेषण नहीं हुआ अपितु मनोवैज्ञानिक अनुभूतियां जीवन्त हुई हैं। फलत: चरित्र चित्रण की दृष्टि से कहानियां पात्रों के बाह्य व्यक्तित्व की स्थूलता के स्थान पर आंतरिक सूक्ष्मता पर टिकी है। प्रेमचंद के अपने शब्दों में – 'जो लेखक मानव हृदयों के रहस्यों को खोलने में सक्षम है, उसी की रचना सफल है वह उन्हीं पात्रों का सफल चित्रण कर सकता है जिनसे वह निजी अनुभव से परिचित है। मेरे अधिकांश पात्र यथार्थ जीवन से लिए गये। जब किसी पात्र का यथार्थ में अस्तित्व नहीं होता, तब वह छाया मात्र अनिश्चित अविश्वसनीय हो उठता है।'[15,16]

प्रेमचंद की रचना दृष्टि समकालीन जीवन सत्यों से निर्मित होने के कारण बहुरंगी वर्गो के पात्र मजदूर, किसान, पूंजीपति, जमींदार, दलित, महाजन , मालिक-नौकर, शहरी-ग्रामीण आदि के आपसी सामाजिक व आर्थिक संबंधों, स्थितियों, संघर्षों, समस्याओं व मनन स्थ‍िातियों को बेहद आत्मीयतापूर्ण अभिव्यक्ति देते हैं। विषमताओं की कोख से उपजी कहानियों में महानता के स्थान पर साधारण व्यक्ति का प्रतिष्ठा हुई है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान का कथन है –

''कहानियों के पात्र बहुमुखी व विविध हैं इसका कारण प्रेमचंद के निजी अनुभव, विस्तृत ज्ञान, दार्शनिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवस्था के प्रति रूख और इनसे भी बढ़कर सर्वप्रमुख बात-आसपास की बिखरी जिंदगी में विचर रहे मनुष्यों को भीतर से जानने का प्रयास। लेखक का व्यक्तित्व भी वही विकास पाता है जब वो निम्न मध्यवर्ग, श्रमिकों, दलितों व कृषकों के जीवन संघर्ष को लेखनी में साकार करने को आतुर हो उठते हैं। प्रसंगानुसार तीखे-चटपटे हास्य व्यंग्य के अचूक प्रहार सामाजिक विषमता पर भी किये।''स्पष्ट है प्रेमचंद ने विराट मानवतावादी दृष्टि से व्यक्ति को सामाजिक इकाई के रूप में मान्यता दी और स्वीकारा कि–'व्यक्ति की सारी समस्याएं, उसका व्यक्तित्व, अहं, मूल भावधारा, आत्म चेतना सभी कुछ सामाजिक परिधि में बनते बिगड़ते हैं और वह समाज के प्रति लोक कल्याण भावना के लिए उत्तरदायी हैं, साहित्य भी समाज सापेक्ष है, उससे हटकर कुछ नहीं अर्थात् समाज के बाहर व्यक्ति, साहित्य, कला आदि किसी की भी गति नहीं'। सामाजिक सापेक्षता के कारण ही अहंवादी वैयक्तिक दृष्टिकोण को जड़ता व पतन का प्रतीक मान उसे समाज के लिए हानिप्रद माना।'नोंक-झोंक' निबंध में एक स्थल पर बड़ी उपयोगी बात प्रेमचंद कहते हैं – 'स्वर्ग और नरक के ख्याल में वे लोग रहते हैं जो आलसी हैं, मुर्दा हैं, हमारा स्वर्ग नरक यहीं ठोस धरती पर है, इस कर्म विधान विश्व में हम कुछ करना चाहते हैं।'यह दर्शन, यह विश्वास प्रेमचंद साहित्य की बुनियाद है। उनके पात्र जुझारू हैं, जिजीविषा युक्त कर्मठ हैं, विपत्तियों से यथा शक्ति लोहा लेते हैं, थकते हैं, टूटते हैं, गिरते हैं, पुन: सामर्थ्य संजो। आक्रामक मुद्रा में प्रहार करते हैं। शोषण मूलक व्यवस्था पर एक ही ध्वनिउनमें गूंज रही है–'हम कमजोर मानव जो व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादे रूढ़ियों, अंधविश्वासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं–वह हमारी अधोगति व पराजय का द्योतक हैं।' पूंजीवाद रूपी कोल्हू ने मानवता को पीस डाला है। समाज की नई उभरती शक्तियों को पुरानी जर्जर शक्तियों से टकराना है। संघर्ष भी तो काफी कठिन है जहां मानव डगमगाने लगता है पर उसे साहस व दृढ़ निश्चय से एक-एक बंधन को तोड़कर उसे भिन्न-भिन्न करना है।

वर्षों बीत गये, किन्तु प्रेमचंद के ये कर्मठ संघर्षशील पात्र आज भी हमारी कल्पना में जीवित हैं, विस्मृति की गर्त में नहीं गुम हुए, उनके विचार, क्रिया-कलाप हम नहीं भुला पाते मानों उनका अंकन उस सभी व निर्भीक क़लम से हुआ है जो विश्व की विराट चित्रशाला में अनगिनित चित्र नित्य बनाती और मिटाती है।

कहानी के रचना विधान को निरन्तरता व विकासशील पथ की ओर उन्मुख करने में संवाद या कथोपकथन की निश्चित व संभावित भूमिका रहती है। सशक्त संवादों से रहित कहानी मौन व अधूरी रहती है, सार्थकता की मंजिल तक नहीं पहुंच पाती। लेकिन प्रेमचंद की कहानी कला का श्रृंगार संवादों में कहानी की आत्मा सर्वत्र बोलती है। कथ्य सजीव, रोचक, विकसित करने, पात्रों के अन्त:करण के आलोड़न-विलोड़न को दर्शाने तथा देशकाल वातावरण को प्रभावी रूप से अंकित करने में संवाद सक्षम हैं। इसलिए वे शिक्षित-अशिक्षित, परिष्कृत, देशी-विदेशी, ग्रामीण-आंचलिक, लोकभाषा की स्थानीय बोलियों की रंग-बिरंगी छाप से पुष्ट हैं संतुलित हैं इसमें पर्याप्त गंभीरता है–'अलग हो जाने से बच्चे तो अलग नहीं हो गये।' (अलग्योझा)

संवाद लेखन में प्रेमचंद कहीं भी तटस्थ होकर कलम नहीं चलाते अपितु जीवन प्रवाह में सक्रिय भूमिका निभा उसे सशक्त गति प्रदान करने वाले कहानीकार हैं। संवादों की अन्य विशेषता उनमें कथ्य कम, तथ्य अधिक है अर्थात कथोपकथन नपे-तुले,

अभिप्राय, मतंव्य को स्पष्ट करने वाले और सारगर्भित हैं। यह विशेषता अन्य कहानीकारों में प्रायः दुर्लभ है–''खूब खा और आशीर्वाद दे, जिसकी कमाई है वो तो मर गई, उसे रोएं-रोएं से आशीर्वाद दे, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं।'' (कफ़न)

लेखक द्वारा निजी विचारों व सिद्धांतों के प्रतिपादन व मनोरंजकता लाने हेतु घटनाक्रम में गतिशीलता लाई गई है। सबसे महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में यह है कि उपन्यासों की भांति संवाद सैद्धान्तिक वाद-विवाद या व्याख्यान का रूपाकार नहीं लेते जैसा कि गोदान, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि व रंगभूमि के स्थल-स्थल पर बिखरे नीरस व बोझिल संवाद जिनमें एकरस्ता व बोरियत का तीखा एहसास पाठक को स्वाभाविक रूप से हुआ है। कहानियों से इस दोषपूर्ण प्रणाली से बचते हुए प्रेमचंद पात्रों के मध्य छोटे-छोटे थे संक्षिप्त, अर्थगर्भित वाक्यों से आपसी वार्तालाप विकसित करने में कामयाब हुए। जिससे संवादों का गठन मंजा हुआ, चुस्त, भाव-प्रवण, तथा अर्थ-गार्म्भीय से युक्त है। इनमें रस-संचार की अद्भुत शक्ति है। जिन समस्याओं की चर्चा, मनोभावों व संवेदनाओं का आदान-प्रदान पात्र परस्पर संवादों से करते हैं, वह सहज ही पाठक हृदय में घुसपैठ करने में समर्थ है।

मानव-चरित्र से सुपरिचित प्रेमचंद पात्रों की मनोवृति व स्वाभानुकूल संवादों का चयन करते हैं जो प्रसंगानुकूल स्वाभाविक व सहज व्यक्त हुए हैं—विशेषरूप से व्यंग्यात्मक संवादों के नश्तर समाज की नसों में व्याप्त गंदे बदबूदार मवाद को निकालने के लिए चीरा लगाने का काम करते हैं, किसी भी स्थल पर व्यंग्य अर्थहीन नहीं हुआ। जैसे-जैसे प्रेमचंद की कला में परिपक्वता आती गई, नश्तर और तेज और उपयोगी होते गये इससे संवादों में ओजगुण व प्रखरता आई, जैसा कि'शतरंज के खिलाड़ी' में 'कला कला के लिए' मनोवृति पर तीखा व्यंग्य है। ऐतिहासिक पात्र नवाब मिर्जा और मीर आत्मसुख व अहम भाव युक्त हैं जिनके लिए निजी मनोरंजन ही सर्वस्व है देश जाए भाड़ में। 'कफ़न' में घीसू व माधव का परस्पर वार्तालाप नाटकीय तथा व्यंग्य प्रहारों से ओत-प्रोत है–'कैसा बुरा रिवाज़ है जिसे जीते जी तन ढांपने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।'[14,15]

देशकाल वातावरण:–समसामयिक युग की आंतरिक व बाहरी स्थितियों को सहज रूप से समेटने का प्रयास प्रेमचंद की कहानियों में है। इसलिए रचनाओं में धर्म, समाज, परिवार, घर, कृषि व उद्योग धंधों की विशिष्टतों को उभारा है। साथ ही भौगोलिक व प्राकृतिक शक्तियों का उल्लेख भी वातावरण को प्रभावशाली बनाता है।

कहीं-कहीं वर्णनों व ब्योरों से अवश्य काम लिया, पर अस्वाभाविकता नहीं आने दी। कई कहानियां वातावरण प्रधान हैं तो कई देशकाल की दु:खद स्थितियों की जीवन्त करने वाली। यह तो सर्वविदित है कि प्रेमचंद दरिद्रता में जन्मे, दरिद्रता में पले और दरिद्रता से जूझते हुए ही समाप्त हो गये। इसी दरिद्रता ने उन्हें तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों, धार्मिक ढकोसलों, राजनैतिक हलचलों, आर्थिक मोर्चे से जूझता स्वदेशी उद्योग, डांवाडोल अर्थव्यवस्था से उपजे असंतुलन व वैषम्य को भली-भांति, जांच-परख कर अनुभूति की ईमानदारी से लेखनी में उतारने का अवसर दिया। इस तथ्य से परिचित होते हुए कि धार्मिक व सामाजिक कुसंस्कारों के बोझ को लादे, असभ्य, गंवार, अशिक्षित, पददलित, श्रमजीवी वर्ग घोर परिश्रम के बावजूद अपमान, ताड़ना, उपेक्षा निरन्तर सहते हैं। पर उनकी मानवता फिर भी जीवन उज्जवल है।

जबकिशोषक वर्ग समाज का रक्त चूसती जोंके है, सभ्यता व प्रतिष्ठा की केंचुली धारण किये भयंकर विषधर है जो निजी स्वार्थपरकता के कारण जाति, धर्म-संप्रदाय के नाम पर सामान्य जन को गुमराह करते हैं। इसी संभ्रांत वर्ग की कुरूपताओं, कुत्साओं, कुप्रवृत्तियों को उघाड़ते हुए वे किसानों, श्रमिकों, नारियों, अछूतों, कलम के श्रमजीवियों को सहानुभूतिपूर्ण हो विराट मानवतावादी परिधि में समेट लेते हैं।

प्रेमचंद का कथा-साहित्य अपने युग का मजबूत सहायक ही नहीं बनता, अपितु इससे भी आगे राष्ट्र उत्थान तथा राष्ट्र-निर्माण की स्वस्थ परम्परा को जन्म देता है क्योंकि इस युग का कलाकार केवल देशभक्ति व राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, वरन् उससे भी आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।

मनोविज्ञान:–प्रेमचंद मनोविज्ञान को कहानी कला का सर्वोतम तत्व मानते हैं। उन्होंने अपने चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या नहीं की अपितु संकेत भर किया है। लेखन के प्रारम्भिक काल में रची कहानियां बड़े घर की बेटी, पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा, परीक्षा, ममता, रानी सारन्धा इतिवृतात्मकता के मोहाश में बंधी वर्णनात्मक हैं, घटनाओं का साम्राज्य दृढ़ता की भित्ति पर टिका है, आदर्श का प्राबल्य, संयोग की धुरी पर कहानी घूमी है। यहां पाठक कथा सौष्ठव की कलात्मक सजावट में उलझकर पात्रों की मानसिक गहराइयों के गर्भ में निहित भावात्मक सौंदर्य के दर्शन से वंचित रहा है। लेकिन धीरे-धीरे परिवर्तित होती साहित्यिक रुचि, व्यावहारिक दृष्टि तथा जीवन के ठोस यथार्थ अनुभवों ने घटनाओं के महत्व को कम कर दिया तथा वर्णनों के विस्तार के प्रति अनास्थावाद को जन्म दिया। अब कहानीकार की निर्मम तटस्थ दृष्टि घटनाओं को घटना के रूप में नहीं देखती, मनोविज्ञान की कसौटी पर इनकी अब उतनी ही उपयोगिता है कि वे पात्रों के अन्त:प्रदेश की वैविध्यपूर्ण प्रदर्शनी के मध्य में हमें लाकर स्वयं वहां से ओझल हो जाए।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

विकास के इसी दौर में प्रवेश कर प्रेमचंद यह कहने को बाध्य हुए ‘‘कहानियां केवल घटनाओं व सूचनाओं का संग्रहालय नहीं, अपितु जीवन और उसके पात्रों के अन्तर्विरोधियों की सार्थक अभिव्यक्ति है। आज की कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व यथार्थ चित्रण को अपना ध्येय मानती है। कई रस्मों, कई चरित्रों, कई घटनाओं के लिए कथा की जमीन के पास स्थान नहीं। आज के लेखक का उद्देश्य स्थूल सौंदर्य नहीं, एक ऐसी प्रेरणा है, जिसमें सौंदर्य की झलक हो, इसके द्वारा पाठक की कोमल भावनाओं को स्पर्श कर सके’’ इसलिए उत्कर्ष काल में लिखी कहानियां स्थूल जगत के ऊंचे-ऊंचे टीलों का मोह त्याग कर सूक्ष्म जगत के आंतरिक प्रदेश में हल्की घुसपैठ करने में व्यस्त हैं। कला के इसी प्रौढ़ व विकसित रूप का दिग्दर्शन मिस पद्मा, अलग्योझा, नशा, ठाकुर का कुआँ, सुजान भक्त, मनोवृति, बड़े भाई साहब, पूस की रात, ईदगाह व कफ़न कहानियों में होता है जो प्रत्येक दृष्टि से आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहानियों से प्रतिस्पर्धा करने का सामर्थ्य रखती हैं। इनमें कथ्य के इतिवृत का संकोच, आकार लाघव व मानव मन के विवेचन-विश्लेषण की प्रवृति स्पष्ट है।

निसंदेह प्रेमचंद का मनोविज्ञान विशुद्ध अनुभूति मूलक है। पात्रों के साथ-साथ संक्षिप्त घटनाओं का नियोजन व वातावरण निर्मिति वैज्ञानिक धरातल पर अवस्थित है। साथ ही परिस्थिति विशेष में पात्र के मन में तदनुकूल भावों के उदय का तथा उनके अनुरूप व्यवहार और चेष्टाओं का चित्रण कहानी में यथार्थ लाकर उसे आकर्षक बनाने में सफल है। इसके अतिरिक्त कहानी में वर्णित बुरे पात्रों की कुप्रवृत्तियों के नीचे दबे पड़े सद्गुणों का प्रकाशन भी यथासंभव प्रेमचंद ने दिखाया। अन्त:संघर्ष की सुंदर योजना कहानी की प्रभावशीलता में वृद्धि लाने हेतु की।

इसलिए समाज के उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग के लगभग सभी व्यक्तियों-किसान, मजदूर, सेठ साहूकार, पूंजीपति, डॉक्टर, वकील, क्लर्क, जमींदार, साधु, भिखारी, चपरासी, श्रमिक, विधवा, विमाता, अध्यापक, विद्यार्थी, पंडित, पुरोहित, राजा, महंत, कुल वधुएं, राजमाता, वेश्या, स्त्री-बच्चे-बूढ़े के चरित्र की सजीव मूर्तियां प्रत्यक्ष कर दी। विविध स्थितियों के बीच इन विविध मनुष्यों के मन में कैसे-कैसे भाव जगत हैं, प्रतिक्रियास्वरूप कैसी उनकी चेष्टाएं होती हैं, व्यवहार होता है इस तथ्य की गहरी सूझ-बूझ प्रेमचंद को व्यापक रूप से है। यथार्थ जिंदगी से नाता जोड़े ये पात्र ऐसे सामर्थवान सिद्ध हुए हैं कि जिनसे मानवीय संवेदनाएं वायवी धरातल पर नहीं अपितु मानवता की सुदृढ़ भित्ति पर अवस्थित है।

भाषा शैली :–भावानुभूतियों के समान प्रेमचंद भाषा के भी सम्राट कहलाए। हिन्दी कथा साहित्य को सर्वप्रथम प्रेमचंद ने ही प्रवाहयुक्त मुहावरेदार, सुगम, सुबोध, साधारण बोलचाल की बहुलता लिये पात्रानुकूल भाषा प्रदान की। जो उनकी उलझी मन:स्थिति तथा बाहरी संघर्ष के यथार्थ का सशक्त प्रतिबिम्ब प्रस्तुतकरती है, इसमें एकरसता नहीं, विविधता है। पात्रों के मनोभावों से तादात्म्य स्थापित करने में इस तरह सफल हुए प्रेमचंद अत्यंत निपुण प्रयोग धर्मी के रूप में विख्यात हुए।

कृत्रिमता व आडम्बर से शून्य हो सीधी सरल होने के कारण प्रेमचंद की भाषा उनके व्यक्तित्व व कृतित्व की भांति ही आम जनता की है, उसमें इतनी चुस्ती खानगी, इतनी सादापन व सजीवता है कि आलोचक इसे ‘प्रेमचंदी’ भाषा की संज्ञा देते हैं। उन्होंने अरबी, फारसी, उर्दू, तत्सम तद्भव, अंग्रेजी, देशज़ तथा लोक सूक्तियों के सार्थक प्रयोग कर अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया। यानि शब्दों के विस्तृत भंडार को भावों की लड़ी में पिरोने में सिद्धहस्त थे। जीवन की गहराइयां, नैतिकताओं तथा मूल्यों को नापने वाली अर्थगर्भित तथा कलात्मक सूक्तियां तो कहानियों में स्थल-स्थल पर बिखरी पड़ी हैं जिनके अतुल वैभव ने भाषा को महिमा मंडित और अद्भुत लोच प्रदान किया। भाषा में मुहावरेदार उर्दू की तराश व चुस्ती के साथ-साथ हिन्दी की हार्दिकता का भी अद्भुत समन्वय प्रदर्शित हुआ। वाक्य भी कुशल शिल्पी की भांति तराशे गये। आंचलिकता व लोक भाषा के शब्दों का प्रयोग भी मार्मिक है। इसीलिए प्रेमचंद समकालीन कथाकारों से कहीं अधिक निपुण और समर्थ रचनाकार हैं।[17]

कथा शिल्प कहानी की बाह्य पर्यावरण का परिचालक होने के साथ-साथ लेखक के व्यक्तित्व, उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता तथा प्रभविष्णुता अन्तर्हित किये रखता है, पर प्रेमचंद के कथा साहित्य विधान की परख हेतु कोई निर्धारित कसौटी है ही नहीं क्योंकि उसमें इतनी सादगी, स्पष्टता व सीधापन है कि सब कुछ अत्यंत स्वाभाविक व अपनेपन से युक्त लगता है। किसी भी प्रकार के श्रृंगारिक प्रसाधनों, अलंकरण, चमत्कार, पच्चीकारी या फिर अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना के रंग में नहीं रंगे। इसी उदासीनता की वजह से शैली-शिल्प की वास्तविक कुशलता रूपायित हो पाई है।

शैली विधान की दृष्टि से प्रेमचंद अन्य पुरुष प्रधान ऐतिहासिक वर्णनात्मक शैली अपनाते हैं। कहीं-कहीं उत्तम पुरुष की आत्मकथात्मक शैली के सुंदर उदाहरण भी उपलब्ध हैं, जैसे नशा कहानी, जो मानव मन के अन्तर्द्वन्द्व का चरम निदर्शन दर्शाता है। विवरणात्मक शैली, नाटकीय शैली, डायरी शैली, पत्रात्मक शैली, भावनात्मक शैली और चित्रात्मक शैली आदि

विविध शैलियों के कलात्मक प्रयोग कहानियों में किये गये जहां व्यंजना, लाक्षणिक प्रयोग, वातावरण प्रस्तुत करने वाले सजीव वर्णन तथा चित्रण की रेखाएं बेहद स्पष्ट व पैनी हैं।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

सोद्देश्यता:– प्रेमचंद ने एक अत्यंत सारगर्भित वाक्य कहा है–'सृष्टा जनता की अदालत में अपनी हरेक कृति के लिए जवाबदेह है। प्रेमचंद ने इसलिए जीवन को आत्मीयता पूर्ण दोनों बाहों में समेटा है, किसी न किसी विशिष्ट उद्देश्य का प्रतिपादन किया। अपने जीवन-दर्शन व विचारधारा से घटनाओं को गतिशील किया व सजीव पात्र सृष्टि की। उनका मूल उद्देश्य-परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मानव की दुर्बलता, चारित्रिक कमजोरी प्रत्यक्ष कर उसका परिष्कार दिखाना है। इस उद्देश्य भावना से कहीं-कहीं वे उपदेशक व प्रचारक बन गये हैं। साहित्य का ऐसा सुस्पष्ट व सुधारवादी रूप उच्च कलात्मक स्तर की कहानियों के लिए घातक सिद्ध हुआ है। अनावश्यक विवरणात्मक स्थूलता भी इसकी एक वजह बनी। ऐसी स्थिति में जीवन का व्यापक पक्ष प्रस्तुत करने की आकांक्षा से अनेक कहानियों में दोहरे-तिहरे कथानकों की वजह से निश्चय ही वे असंतुलित हो गये। इसलिए जीवन का विराट चित्र सजीव अंकन मिलने के बावजूद मार्मिक स्थलों से वंचित रह जाता है और कहानीकार का मन्तव्य भी अस्पष्ट एवं अधूरा ही रह जाता है। यही कारण है कि पात्र भी विवरणों के जाल में उलझकर कहानीकार के हाथों की कठपुतलियां बन स्वतंत्र शारीरिक तथा सूक्ष्म वैचारिक अस्तित्व बनाये नहीं रख पाते। लेकिन जहां वर्णनों का त्याग किया वहां पात्रों का व्यक्तित्व भी स्वतंत्र हो सजा संवरा है तथा कहानीकार का उद्देश्य भी संपूर्ण वैभव से निखरा हैं। कफ़न, शतरंज के खिलाड़ी, लेखक, पूस की रात व नशा ऐसी ही कलात्मक रचनाएं है। निरंतर निर्धनता के कारण मानवता का पतन गिरावट की सीमा को किस हद तक स्पर्श करता है, ऐसा कफ़न जैसी प्रगतिशील रचना में, संयुक्त परिवार की उपयोगिता का समर्थन अलग्योझा में , बाल मनोविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण ईदगाह में, परोपकार का महत्व तथा संपन्न वर्ग की विलासिता पर कटाक्ष 'शिकार' में अर्थात संपूर्ण कहानी साहित्य उपयोगितावाद, समाज-सुधार, मानववाद, समन्वयवाद के उदात्त आदर्श को आत्मसात करने में व्यस्त है। प्रेमचंद सही अर्थों में समाज के प्रवक्ता कहलाए।

इसी सोद्देश्यता का आशय प्रेमचंद के जीवन दर्शन 'आदर्शोन्मुखी यर्थाथवाद' में भी छिपा है। इस रूप में उनका साहित्य जहां एक ओर समाज की कुत्साओं व कुरूपताओं का घिनौना रूप दर्शाता है वहीं उन्हें संवारने, सुधारने की प्रेरणा देता है। यथार्थवाद यह है कि जो कुछ कहा वह सच्चाई और ईमानदारी से कहा और आदर्शवाद यह कि इस सत्य को मानवतावाद के सौंदर्य से अभिभूत किया, लोक मंगल की व्यापक भावना से मंडित किया। मानवता के शाश्वत प्रश्नों को मानव भावों, संवेदनाओं, संघर्षों व कुण्ठाओं के व्यापक फलक पर उठाया। मानव हृदय का विश्लेषण ही मुख्य ध्येय रहा। इसलिए साहित्य सामाजिक न होकर चिरन्तन शाश्वत है।

मानवतावाद :–लेखन कला के प्रति प्रेमचंद का विशिष्ट दृष्टिकोण था वह इसलिए क्योंकि मानव होने के नाते, हमें मानव समाज को, जीवन को अर्थात् अपने आपको देखने समझने और उसका मूल्यांकन करने का अधिकार है। अब लेखक इसलिए है कि वह औरों की तरह समष्टि के व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व नहीं खो बैठता। अपने व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के द्वारा देखने का अभ्यास होने से जाने अनजाने दृष्टिकोण बना लेता है और सही मायने में प्रेमचंद का दृष्टिकोण मानवतावादी था तथा उनके अनुसार – 'मानव दुर्बल है और रहेगा, पर उनकी दुर्बलता ही कभी उसे ऊंचा उठायेगी, कभी गिरा देगी। वे समाज के नहीं, मानव के नहीं, उनकी बुराइयों के कट्टर विरोधी थे, इन्हें दूर कर कल्याण के पक्षपाती थे।'

प्रेमचंद का मानवतावाद उनकी कला से कहीं अधिक महान था। रचनाओं में जिन दलितों के जीवन का सजीव चित्रांकन किया, उनके प्रति केवल मौखिक सहानुभूति नहीं थी, अपितु इस सहानुभूति को अनेकोबार व्यावहारिक रूप में व्यक्त कर परवर्ती पीढ़ी के लिए अनुकरणीय आदर्श छोड़ गये, कला की अनुभूति का वास्तविक मूल्य यहीं पर स्थिर है। अपनी घोर आर्थिक संकटग्रस्त स्थिति के बावजूद विभिन्न विषमताओं को भोग रहे परिचित या अपरिचित व्यक्तियों को यथासंभव आर्थिक मदद पहुंचाने में सदैव उद्यत रहे।

कहानियों के विस्तृत व गहरे अध्ययन से इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि व्यक्तित्व का मानव पक्ष अत्यंत विकसित है, नितान्त व्यावहारिक, युग धर्म के अनुकूल व समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित है। युग पुरुष गांधी जी के प्रभाव से प्रेमचंद के जागरण सुधार मूलक जनवाद को अपनाया। भारत की दीन-दुखी जनता गांव के अनपढ़ मेहनती किसान, शहरों के श्रमिक शोषित मजदूर, निम्न वर्ग के असंख्य श्रम-श्रातं वर्ग, वर्ण व्यवस्था के शिकार नर-नारी उनके स्नेह के पात्र बने। इनके आचार-विचार, रहन-सहन, दु:ख-सुख, भाषा-भाव, आशा-आकांक्षा सभी कुछ लेखकीय सहानुभूति की व्यापक परिधि में सिमटा है। एक समीक्षक के शब्दों में – 'झोंपड़ियों से लेकर महलों तक, रंक से लेकर राजा तक, भिखारी से लेकर महन्तों तक, घर की कुल-वधुओं से लेकर वार-वनिताओं तक, रोटियों के लिए ललकते मानव प्राणियों से लेकर मखमली सेज पर सोने वाले रईसों तक कहानी साहित्य की अविरल धारा अबाध बही है।'

प्रेमचंद ने भारतीय अध्यात्म व ईश्वर की कल्पना पर संदेह दर्शाया। जप-तप, पूजा-पाठ धार्मिक आडम्बरों का खुलकर उपहास उड़ाया। उनकी दृष्टि में मानवता की सेवा करना, निराश्रितों को आश्रय देना व पीड़ितों का कष्ट दूर करना धर्म की सच्ची साधना है। सामाजिक विषमता व धर्म की व्यवस्था ईश्वरीय विधान नहीं, अपितु कुछ विशेष वर्गों की स्वार्थभावना व तुच्छता से प्रसूत है जिनका विरोध व परिष्कार मनुष्य के प्रयत्नों से ही संभव है। इस रूप में प्रेमचंद ऐसी जनवादी संस्कृति के निर्माण की बुनियाद

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

डालते हैं जहां सामाजिक भेदभाव व विसंगतियां दूर की जाएं, मानव स्वातन्त्र्य व सामान्य जीवन को विशेष स्तर पर लाने हेतु संस्कार हीनता को हटाया जाए, मानव जीवन का उत्थान हो, रूढ़ियों की ताड़ना कर असहनीय,अवास्तविक स्थितियों से मुक्ति पाने का प्रयास हो, व्यक्ति से अधिक समाज की महत्ता हो, श्रमजीवी वर्ग निरन्तर सुखी, समृद्ध व सुसंस्कृत बने। वस्तुत: प्रेमचंद की दृष्टि निर्माणात्मक रही। जीर्ण-शीर्ण विश्वासों को नई धरती पर आरोपित करने की तीखी आकांक्षा उनमें थी इसलिए सौंदर्यजन्य कल्पना की परिणति वस्तुगत कल्पना में हुई।[18]

निष्कर्ष

प्रेमचंद ने यह स्पष्ट अनुभव किया कि सामाजिक समस्याओं का मूल कारण दूषित आर्थिक व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत पूंजीवाद व औद्योगिकीकरण की शक्ति धन के असमान वितरण को बढ़ावा दे विषमता उपजाती है। इस रूप में वे मार्क्सवाद के 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' से प्रेरणा नहीं लेते वरन् निजी अनुभवों से सीखते हैं। 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक से लिखे अपने अत्यंत महत्वपूर्ण निबंध में इसकी व्याख्या सारगर्भित अर्थों में की है–'जिनके पास पैसा है, वह देवता तुल्य है उसका अंत:करण कितना भी काला क्यूं न हो साहित्य, संगीत, कला सभी धन की देहली पर माथा टेकते हैं हवा इतनी जहरीली हो गई है कि सांस लेना दूभर हो रहा है'। आगे लिखते हैं 'जिसमें मनुष्यता, उच्चता, अध्यात्म सौंदर्य बोध है वह कभी भी ऐसी दूषित व्यवस्था का समर्थन नहीं करेगा, जिसकी नींव लोभ, स्वार्थ-परकता व दुष्ट मनोवृति पर टिकी हो'। उनका अटल विश्वास देखें – 'भारत की आत्मा अभी जीवित है मुझे विश्वास है कि वह समय आने में देर नहीं जब हम सेवा, त्याग, अविश्वास के पुराने आदर्शो पर लौट आयेंगे, तब धन हमारा ध्येय नहीं होगा। हमारा मूल्य धन के कांटे पर नहीं तोला जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति जो अपने शारीरिक श्रम व दिमाग की मेहनत से कुछ पैदा कर सकता है वही राष्ट्र व समाज का सम्मानित सदस्य बन सकता है।'

प्रेमचंद इस दृष्टि से भी मानवतावादी थे कि चाहे उन्होंने संभ्रान्त उच्च वर्ग के राजा, उद्योगपति, जमींदार, मध्यवर्ग के व्यवसायी, नौकरी पेशा, समाज के पुराण पंथी पंडित पुरोहितों की शोषक वृति व कुत्साओं की प्रखर आलोचना की, पर उनकी व्यक्तिगत समस्याओं व उलझनों की वजह से उन्हें अपनी सहानुभूति से वंचित रखा। वह कहते थे–'सामाजिक और आर्थिक आवरण के नीचे आखिर पूंजीवादी भी मनुष्य हैं। उसी तरह दु:ख दर्द के शिकार हैं जैसे मजदूर। राजनैतिक दलबंदी में आकर अपने मन में ऐसे खाने बना लेना कि उनके दु:ख दर्द का प्रवेश ही न हो, सर्वथा अप्राकृतिक और अमानवीय है'। वास्तव में प्रेमचंद कहीं भी कठोर नहीं होते, कहीं भी दम्भ नहीं भरते, यह उनके व्यक्तित्व की अभूतपूर्व विजय रही। इसी व्यापक सहानुभूति के कारण साहित्य का क्ष्ेात्र बहुविध व विस्तृत हुआ जिसमें मानवतावाद का नया क्षितिज उभरता दिखाई देता है–जन आकांक्षाओं, आशाओं नये स्वप्नों का क्षितिज आगे बढ़ने की आंकाक्षा, भीतर संजोई चिरउर्घ्वमुखी आशा, घोर बर्बरता व जड़ता की स्थिति से ऊपर उठकर महामानवता का सुनहरा स्वप्न, तीक्ष्णतम् कचोटते व्यंग्य गली-सड़ी जर्जर व्यवस्था पर व उसे बदलने का कृत-संकल्प, मानव के स्वर्णिम भविष्य में असीम आस्था और मानवीयता यही प्रेमचंद कथा साहित्य की अमोघ शक्ति है।

प्रेमचंद कथा साहित्य के उपरोक्त विवेचन के पश्चात् इतना तो स्पष्ट है कि भाव, भाषा, कला, शैली सभी दृष्टियों से वे अमर कथा साहित्य के प्रणेता हैं। भारतीय जीवन का सर्वाधिक विशाल व विस्तृत वर्ग का ऐसा कलाकार आधुनिक साहित्य में विरल है। तुलसीदास के उपरांत प्रेमचंद ही ऐसे समर्थ कथाकार हुए जिनकी वाणी उत्तर भारत से लेकर सुदूर दक्षिण छोरों का स्पर्श करती है। इतनी ही नहीं बल्कि देश काल की संकुचित परिधिका अतिक्रमण कर इनका साहित्य अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को स्पर्श कर विश्व मानवता का आलिंगन करता है, जो एक महान उपलब्धि है।

जहां तक कहानी कला का प्रश्न है, इस संदर्भ में प्रेमचंद ने जो मान्यताएं व आदर्श जीवन में आत्मसात् किये, उनका सफल निर्वाह व निर्धारण कहानियों में किया। आज कहानी जहां पाश्चात्य साहित्य के आदर्शों का अनुकरण कर अनेक वाद-विवादों के कठिन दौर से गुजर रही है, वहीं प्रेमचंद इसके अपवाद रहे, कहानी को समाज से जोड़कर किसी प्रचलित वाद या सिद्धांत से न जुड़कर भावी पीढ़ी के लिए प्रशस्त पथ तैयार कर गये।

उपन्यास सम्राट के नाम से तो प्रेमचंद सुप्रसिद्ध हुए ही, कहानी लेखक होने के नाते वह और आगे बढ़ते गये।[19]

संदर्भ

1. डा. कमलेश वर्मा, 'प्रेमचंद के किसान, पिछड़ी जातियां और भारतीय संस्कृति' (आलेख), आरोह (पत्रिका), अंक-1, वर्ष- 1, असम विश्वविद्यालय, सिलचर, 2013, पृ.-102
2. प्रेमचंद, गोदान, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, 1996, पृ.-198
3. वही, पृ.-199

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

|| Volume 9, Issue 10, October 2020 ||

4. वही, पृ.-12
5. प्रेमचंद, सवा सेर गेहूं (कहानी), मानसरोवर-4, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ-167
6. गोदान, पृष्ठ-5
7. वही, पृ.-32
8. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, मारुति प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ-36
9. वही, पृष्ठ-103
10. वही, पृष्ठ-45
11. गोदान, पृष्ठ-9
12. वही, पृष्ठ-9
13. देखें, वही, पृष्ठ 163-164
14. प्रेमचंद, प्रेमचंद के विचार (भाग-2), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ-29-30
15. प्रेमचंद, सुजान भगत (कहानी), मानसरोवर-5, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ-164
16. प्रेमचंद, सभ्यता का रहस्य (कहानी), मानसरोवर-4, पृष्ठ- 176
17. डा. कमलेश वर्मा, वही, पृ.-104
18. गोदान, पृष्ठ-98
19. वही, पृष्ठ-99

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor

Impact Factor:
7.512

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर
NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

www.ijirset.com

Scan to save the contact details